देवी चौधरानी

बंकिम चन्द्र

लाइब्रेरी बुक सेंटर

'प्रफुल्ल, अरी प्रफुल्ल !'

'आई मा ! अभी आई ।'

'क्या है मां ?' बेटी पास आकर बोली ।

'घोष के यहां से एक बेंगन लेआ ।'

'मैं नही जाऊंगी । भीख मांगते मुझसे नहीं बनता ।'

'तब क्या खाएगी ? घर में आज कुछ भी नही है ।'

'रूखा भात खाऊंगी । नित्य माग कर मैं क्यों खाऊं ?'

'अरी गरीबी को मागने मे लज्जा कैसी ? अपना भाग्य ही ऐसा है ।'

प्रफुल्ल ने कोई उत्तर न दिया, मा ने फिर कहा, 'तो तू भात चढ़ा, मैं जाकर ले आती हूं ।'

'तुम्हें मेरी सौगन्ध मा ? भीख मांगने न जाना । चावल है, नमक है, कच्ची मिर्चा है, फिर और हमे क्या चाहिए ?'

प्रफुल्ल की मां मुस्करा दी । वह चावल धोने चली, परन्तु हाड़ी देखकर बोली, 'चावल भी कहा है ?' केवल आधी मुट्ठी चावल थ", जिससे एक का भी पेट न भरता !

मा हाड़ी लेकर चली तो प्रफुल्ल ने पूछा, 'कहा जा रही हो मां ?'

'थोड़ा चावल उधार लेने जा रही हूं ।'

'हम कितना चावल उधार ले चुके है मां ? तुम अब उधार न लाओ ।'

'तब खाएगी क्या ? घर में तो एक पैसा भी नहीं है जो मोल ले आऊ ।'

'उपवास करूंगी ।' दुखी मन से प्रफुल्ल बोली । -

'उपवास से कितने दिन जिएगी ?'

'मर जाऊंगी, और क्या ?'

'मेरे मरने पर जो चाहे करना। मैं यह नहीं देख सकती। मैं भीख मांगकर तुझे खिलाऊंगी।'

'भीख मांगना बहुत बुरा है मा ! एक दिन के उपवास से आदमी नहीं मरता। आओ हम दोनों मिलकर यज्ञोपवीत बनाएं। कल उन्हें बेचकर पैसे ले आऊंगी।'

'सूत कहां है ?'

'चरखा तो है। मैं अभी कात लेती हूं।'

'रुई कहां है ?

प्रफुल्ल मुंह नीचा करके रो पड़ी। मां फिर चावल उधार लाने चली। प्रफुल्ल मां के हाथ से हांडी लेकर बोली, 'मां मैं भीख या उधार मांगकर क्यों खाऊं ? मेरे पास सब कुछ है।'

मां ने आंसू पोंछकर कहा, 'सब कुछ तो है बेटी ! पर भाग्य में कहां है ?'

'भाग्य में क्यों नहीं है मां ? मैंने क्या अपराध किया है जो ससुर के पास अन्न होते हुए भी मुझे न मिले ?'

'तूने इस अभागी के पेट से जन्म लिया। यही है तेरा अपराध और तेरा भाग्य।'

'सुनो मा ! मैंने निश्चय कर लिया है कि ससुर का अन्न भाग्य में होगा तो खाऊंगी, अन्यथा न खाऊंगी। तुम चाहो खालो पर मुझे मेरी ससुराल पहुंचा दो।'

'यह क्या बेटी ! क्या ऐसा भी हो सकता है ?'

'क्यों नहीं हो सकता मां ?'

'बिना बुलाए ससुराल कैसे भेज दूं ?'

'मांग कर खाया जा सकता है और बिना बुलाए ससुराल नहीं जाया जा सकता ?'

'वे तो कभी तुम्हारा नाम भी नहीं लेते।'

'वे न लें। इससे मेरा अपमान नहीं। जिनके ऊपर मेरा भार है, उनसे मांगने में मुझे लज्जा नहीं। अपना मांगने में लज्जा क्या है ?'

मां रोने लगी। प्रफुल्ल बोली, 'तुम्हें अकेली छोड़कर जाने की मेरी इच्छा नहीं है, परन्तु मेरा दुःख कम होने पर तुम्हारा भी दुःख कम होगा, इस आशा से जाने की इच्छा है।'

दोनों में बहुत देर तक बातें हुईं। मां ने बेटी का ही कहना ठीक समझा। मां ने जो चावल बनाया था, वह प्रफुल्ल ने खाना स्वीकार नहीं किया। मां ने भी नहीं खाया। प्रफुल्ल बोली, 'समय नष्ट करने से क्या लाभ? रास्ता लम्बा है।'

'आ, तेरे बाल बांध दूं।'

'नहीं, इन्हें यूंही रहने दो।'

दोनों मैले कपड़े पहिने ही घर से निकल पड़ीं।

वरेन्द्रभूम मे भूतनाथ नामक एक ग्राम था। वहां प्रफुल्लमुखी की ससुराल थी। प्रफुल्ल के ससुर हरिवल्लभ बाबू बड़े आदमी थे। उनकी बहुत बड़ी जमीदारी थी। दो मंजिल की बैठक थी। चहारदीवारी से घिरा बाग और तालाब था। यह ग्राम प्रफुल्लमुखी के मायके से छः कोस पर था। बिना खाए-पिए मां-बेटी छः कोस पैदल चलकर तीसरे प्रहर वहां पहुंची।

घर में प्रवेश करने को प्रफुल्ल की मा के पैर नहीं उठ रहे थे। प्रफुल्ल कंगाल की लड़की थी। इसलिए हरिवल्लभ बाबू उससे घृणा करते थे, यह बात नहीं थी। विवाह के पश्चात् एक गड़बड़ी हो गई थी। हरिवल्लभ ने जान-बूझकर यह विवाह किया था। कन्या सुन्दर थी, इसी लिए उन्होंने सम्बन्ध किया था। उधर प्रफुल्ल की मा ने अपना सब कुछ लगाकर यह विवाह किया था। उस विवाह में ही वह कंगाल हो गई थी। यहां तक कि अन्न का भी अभाव हो गया, परन्तु भाग्य से फल उल्टा ही हुआ। बरातियों को उसने उत्तम भोजन कराया, परन्तु अपने पक्ष वालों को दही चिउड़ा ही दे सकी। इसे पड़ौसियों ने अपना अपमान समझा। वे बिना खाए ही उठ गए। इससे उन लोगों में मन-मुटाव हो गया। इसका पड़ौसियों ने भयंकर बदला लिया।

रसोई छूने के दिन हरिवल्लभ ने प्रफुल्ल के पड़ौसियों को आमन्त्रित किया। उनमें से कोई न गया और कहला दिया, 'कुल्टा के साथ हरि-

वल्लभ बाबू ने सम्बन्ध किया है। आपको सब शोभा देता है, परन्तु हम गरीबों की जाति ही सब कुछ है। हम जातिभ्रष्ट कन्या के हाथ का पानी नहीं पी सकते।' भरी सभा में यह बात कही गई। हरिवल्लभ ने सोचा, विवाह के दिन जो पड़ोसियों ने प्रफुल्ल के यहां न खाया था, उसका यही कारण होगा। वे झूठ क्यों बोलेंगे? हरिवल्लभ ने उनका विश्वास कर लिया। निमंत्रित व्यक्तियों ने नव-वधू के हाथ का स्पर्श किया भोजन न खाया। दूसरे दिन हरिवल्लभ ने वधू को उसके मायके भेज दिया। तभी से प्रफुल्ल का ससुराल से सम्बन्ध टूट गया। उन्होंने अपने पुत्र का दूसरा विवाह कर दिया। प्रफुल्ल की मां ने दो-एक बार कुछ सामान भेजा, परन्तु हरिवल्लभ ने वह वापस करा दिया। इसलिए आज उस घर में प्रवेश करते प्रफुल्ल की मां के पैर कांप रहे थे।

परन्तु अब लौटा भी नहीं जा सकता था। दोनों ने साहस करके घर में प्रवेश किया। गृह-स्वामी अन्तःपुर में सो रहे थे। प्रफुल्ल की सास अपने पके केश चुनवा रही थीं। तभी प्रफुल्ल और उसकी मां वहां पहुंचीं। प्रफुल्ल ने घूंघट खींच लिया था। उसकी आयु तब अट्ठारह वर्ष की थी।

गृहिणी ने पूछा, 'तुम कौन हो?'

प्रफुल्ल की मां लम्बी सांस छोड़कर बोली, 'क्या कहकर परिचय दूं आपको?'

'क्या परिचय देने में बहुत कुछ बताना होगा?'

'हम लोग तुम्हारे सम्बन्धी हैं।'

'सम्बन्धी! कैसे सम्बन्धी?'

दास की मां, एक मजदूरिन, यहां काम करती थी। वह प्रफुल्ल के घर हो आई थी। वह बोली, 'मैं पहिचान रही हूं, समधिन है।'

'समधिन! कौन समधिन?'

'दुर्गापुर की समधिन। तुम्हारे बड़े लड़के की सास।'

गृहिणी कुछ अप्रसन्न होकर बोली, 'बैठो।'

समधिन बैठी। प्रफुल्ल खड़ी रही। गृहिणी बोली, 'यह लड़की कौन है तुम्हारे साथ?'

'आपकी पुत्र-वधू है।'

गृहिणी कुछ देर चुप रही। फिर बोली, 'तुम लोग यहां कहा आई थीं?'

'आपके पास।'

'क्यों?'

'क्या मेरी बेटी अपनी ससुराल न आती?'

'आती क्यों नहीं? सास-ससुर जब बुलाते, तब आती। भले आदमियों के लड़के-लड़की इसी तरह आते हैं।'

'सास-ससुर यदि सात जन्म बुलाने का नाम न लें तब?'

'यदि नाम न लें तो न आएं।'

'तो खिलाए कौन? मैं अनाथ विधवा तुम्हारी पुत्र-वधू को कहा से खिलाऊं?'

'खिला नहीं सकतीं, तो पैदा क्यों की थी?'

'तुमने खाने-पहिनने का हिसाब लगाकर पेट रखा था तो उसी के साथ लड़के की बहू के खाने-पहिनने का हिसाब क्यों नही लगाया?'

'अरे बाप रे! यह औरत तो घर से संग्राम करने को तैयार होकर आई है।'

'नही, संग्राम करने नही आई हूं। आपकी बहू अकेली नही आ सकती थी, इसलिए पहुंचाने आई हूं। अब जा रही हूं।'

इतना कहकर प्रफुल्ल की मा घर से निकलकर चली गई। मां चली गई, प्रफुल्ल वही रही। वह वैसे ही घूंघट निकाले खड़ी रही। सास बोली, 'तुम्हारी मां गई, तुम भी जाओ।'

प्रफुल्ल हिली तक नहीं। वह प्रस्तर-मूर्ति के समान खड़ी रही।

'अरे तू जाती क्यों नहीं? खड़ी कैसे रह गई? क्या मुसीबत है! फिर तुम्हें पहुंचाने एक आदमी भेजना होगा। अपनी मां के साथ चली जाओ।'

अब प्रफुल्ल ने घूंघट उठाया। चांद की तरह उसका मुख खुला। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। सास ने मन में सोचा, 'आह! ऐसी चांद-सी बहू लेकर भी मैं गृहस्थी न चला पाई।' उसका मन कुछ नरम

हुआ।

प्रफुल्ल अस्फुट स्वर में बोली, 'मैं अब जाने के लिए नहीं आई हूं मां !'

'मैं क्या करूं बेटी ? क्या मेरी इच्छा नहीं है कि तुम्हें लेकर गृहस्थी चलाऊं ? परन्तु लोग तरह-तरह की बातें कहते हैं। जातिच्युत होने के भय से तुम्हे छोड़ना पडा है।'

'मा ! जातिच्युत होने के भय से क्या सन्तान को त्यागा जाता है ? क्या मैं तुम्हारी सन्तान नही हूं ?'

प्रफुल्ल की बात सुनकर सास का मन और भी नरम हो गया। वह बोली, 'मैं क्या करूं बेटी ?'

प्रफुल्ल बोली, 'कुछ भी सही। आपके घर में कितनी ही दासियां है। मैं आपके यहां दासी बनकर ही रहना चाहती हूं।'

गृहिणी अब कुछ न कह सकी। वह बोली, 'लड़की तो लक्ष्मी है, रूप मे भी और बातों में भी। गृह-स्वामी से पूछूं, वह क्या कहते हैं ? तुम यहा बैठो बेटी ?' प्रफुल्ल बैठ गई। तभी द्वार की ओट से एक चौदह वर्षीया सुन्दरी ने, जो घूंघट निकाले थी, प्रफुल्ल को बुलाया। प्रफुल्ल ने सोचा, यह कौन है ? वह उठकर उस बालिका के पास चली गई।

: २ :

गृहिणी ने गृह-स्वामी के कक्ष मे प्रवेश किया। गृह-स्वामी नीद से उठकर हाथ मुंह धो रहे थे। उनका मन प्रसन्न करने के लिए गृहिणी बोली, 'तुम्हें किसने जगा दिया ? मैंने सबको मना किया, परन्तु कोई सुनता ही नही।'

'जगाती तो तुम ही हो। आज शायद कुछ काम है। मुझे किसी ने

जगाया नहीं। बात क्या है ?'

गृहिणी हंसती हुई बोली, 'आज एक घटना घटी है, उसे ही कहने आई हूं।' इस प्रकार भूमिका बांधकर और जरा मटककर गृहिणी ने प्रफुल्ल के आने की बात कही। बहू के चांद जैसे मुख और मीठी बातों का स्मरण कर अपनी ओर से भी कुछ कहा, परन्तु कुछ सफलता न मिली।

गृह-स्वामी क्रुद्ध होकर बोले, 'उसका इतना साहस ! उसे अभी झाड़ू मार कर घर से निकाल दो।'

'छिः छिः, कैसी बातें कहते हो ? कुछ भी हो, है तो वह हमारे लड़के की स्त्री। कुल्टा क्या वह लोगों के कहने से हो गई ?'

गृहिणी ने बहुत बातें कीं, परन्तु सब व्यर्थ। 'कुल्टा को झाड़ू मारकर निकाल दो', यही आज्ञा अंतिम रही। अन्त में गृहिणी क्रुद्ध होकर बोली, 'झाड़ू मारनी है तो तुम्हीं मारो। मैं इस बीच में नहीं पड़ूंगी।' यह कहकर वह चली आई। वह जहां प्रफुल्ल को छोड़ गई थीं, वह वहां न थी। प्रफुल्ल को चौदह वर्षीया लड़की ने बुला लिया था और प्रफुल्ल के वहां घुसते ही उसने द्वार बन्द कर लिया था।

प्रफुल्ल ने पूछा, 'द्वार क्यों बन्द कर लिया ?'

'जिससे कोई आने न पाए। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरा नाम सागर है ?'

'तुम कौन हो बहिन ?'

'मैं तुम्हारी सौत हूं !'

'तुम मुझे पहिचानती हो क्या ?'

'अभी द्वार की ओट से मैंने सब कुछ सुना है।'

'तुम्हीं हो उनकी गृहिणी ?'

'मैं अभागिन गृहिणी कैसे हो सकती हूं। न मेरे दांत उतने बड़े-बड़े और न मैं उतनी काली ही हूं।'

'किसके दांत बड़े-बड़े हैं ?'

'जो गृहिणी है, और किसके ?'

'वह कौन है ?'

'तुम नही जानती ? जानतीं भी कैसे ? कभी यहा रही ही नहीं। हमारी एक और सौत है।'

'मैंने तो अपने अतिरिक्त एक ही विवाह की बात सुनी थी। मैंने सोचा तुम्ही होगी बस।'

'नही, वह तो पहिले की है। मेरे विवाह को तो तीन ही वर्ष हुए हैं अभी।'

'क्या वह बहुत भद्दी है ?'

'मुझे उसका रूप देखकर उल्टी आती है।'

'इसीलिए शायद तुमसे विवाह हुआ ?'

'नही। किसी से कहना मत, तुम्हे बताती हूं। मेरे बाप के पास बहुत रुपया है। मैं अपने बाप की अकेली सन्तान हू। उसी रुपए के लिए···।'

'समझी ! अब कुछ कहने की आवश्यकता नही है। तुम सुन्दर हो और वह भद्दी, फिर वह उनकी गृहिणी कैसे हुई ?'

'मैं अपने बाप की अकेली सन्तान हूं। मुझे वह जल्दी मे यहा भेजते नही ! मेरे पिता से हमारे ससुर की पटती भी नही है। इसलिए मैं यहा नही रहती। कभी-कभी आती हू। दो-चार दिन हुए, आई हूं। शीघ्र ही चली जाऊगी।'

प्रफुल्ल ने देखा, सागर सरल लड़की थी। उससे बोली, 'तुमने मुझे क्यो बुलाया ?'

'कुछ खाओगी ?'

'अब क्या खाऊगी ?'

'तुम्हारा मुख सूखा है। बहुत दूर से चलकर आई हो। तुम्हे प्यास लगी होगी। किसी ने भी तुमसे खाने को नही पूछा। इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया है।'

प्रफुल्ल ने कुछ खाया नही था। प्यास से ओठ सूख रहे थे। बोली, 'सास जी ससुर जी के पास गई हैं। मेरे भाग्य मे क्या है, बिना जाने मैं यहा का कुछ न खाऊंगी।'

'नहीं-नहीं, तुम्हें इन लोगों का कुछ खाने की आवश्यकता नहीं है। खाने के लिए मेरे मायके का है।'

यह कहकर सागर कुछ सन्देस लाकर प्रफुल्ल के मुंह में ठूंसने लगी। प्रफुल्ल को कुछ खाना ही पड़ा। सागर ने ठण्डा पानी दिया। उसे पीकर प्रफुल्ल कुछ स्वस्थ हुई। वह बोली, 'मैं तो स्वस्थ हुई, परन्तु मेरी मा बिना खाए मर जाएगी।'

'तुम्हारी मां कहां गई है?'

'क्या जानू? शायद कहीं बाहर खड़ी होंगी।'

'एक काम करूं।'

'क्या?'

'ठकुरानी को उनके पास भेजू।'

'वह कौन है?'

'ठाकुर की बुआ। वह यहीं रहती है।'

'वह क्या करेंगी?'

'तुम्हारी मां को कुछ खिलाएंगी।'

'मा यहां का कुछ भी न खाएंगी।'

'धत्, किसी ब्राह्मण के घर तो खाएगी।'

'जो इच्छा हो, करो। मां का कष्ट सहा नहीं जाता।'

सागर ने ब्रह्म ठकुरानी को सब समझाया। वह बोली, 'हां बेटी! गृहस्थ के घर से कोई भूखा कैसे जा सकता है?' वह उन्हें खोजने चली।

प्रफुल्ल बोली, 'पहिले जो बातें कर रही थीं, वही करो बहिन!'

'बातें क्या हैं? मैं यहां नहीं रहती। रह भी न पाऊंगी। मेरा भाग्य तो मिट्टी के आम जैसा है। देवता का भोग कभी नहीं बनूंगी, तुम आई हो तो जैसे भी हो, रहो। मैं उस चुड़ैल को देख भी नहीं सकती।'

'मैं तो रहने ही आई हूं। रहने पाऊं तब तो?'

'देखो, ससुर की आज्ञा न भी हो, तब भी तुम चली न जाना।'

'जाऊंगी नहीं तो क्या करूंगी? किसलिए रहूंगी? रहूं तो यदि...।'

'यदि क्या?'

'यदि तुम मेरा जन्म सार्थक करा सको।'

'वह कैसे होगा बहिन ?'

प्रफुल्ल थोड़ा हंसी, परन्तु तुरन्त ही आंखों से आंसू गिरने लगे। वह बोली, 'नहीं समझीं बहिन ?'

सागर तब समझी। वह कुछ सोचकर बोली, 'संध्या के बाद इसी कोठरी मे आकर बैठना। दिन में तो दर्शन मिलना कठिन है।'

प्रफुल्ल बोली, 'पहिले अपना भविष्य जानूं, तब तुमसे भेंट करूंगी। भाग्य में जो कुछ भी हो, एक बार उनसे भेंट करके जाऊंगी। वह क्या कहते हैं, यह भी सुनकर जाऊंगी।' इतना कहकर प्रफुल्ल बाहर आई। सास उसे खोज रही थीं। प्रफुल्ल को देखकर सास ने पूछा, 'कहां गई थी बेटी ?'

'घर द्वार देख रही थी।'

'तुम्हारा ही घर-द्वार है बेटी ! पर क्या करूं, तुम्हारे ससुर किसी भी प्रकार राजी नहीं हो रहे।'

यह सुनकर प्रफुल्ल पर वज्रपात हुआ। वह माथे पर हाथ रखकर बैठ गई। रोई नहीं, चुप रही। सास को उस पर दया आई। उसने मन में सोचा, 'एक बार और प्रयत्न करके देखूं।' वह बोली, 'अब कहां जाएगी ? आज यहीं रह, सवेरे देखा जाएगा।'

प्रफुल्ल बोली, 'वह तो रहूंगी, परन्तु एक बात ससुर जी से पूछना। मेरी मा चरखा कातकर पेट भरती है। उससे एक आदमी का भी पूरा नहीं पड़ता। आप पूछना, मैं क्या काम करके खाऊं ? मैं नीच होऊं, तुच्छ होऊं, हूं तो भी उनकी पुत्र-वधू। उनकी पुत्र-वधू कैसे दिन बिताए ?'

'सास बोली, 'अवश्य पूछूंगी ?'

सन्ध्या को उसी कोठरी में सागर और प्रफुल्ल आपस में बातें कर रही थीं कि तभी किसी ने द्वार खटखटाया। सागर बोली, 'कौन है ?'

'मैं हूं।'

सागर ने प्रफुल्ल का हाथ दबाकर धीरे से कहा, 'बोलना नहीं, वही चुड़ैल आई है।'

'सौत ?'

'हां, चुप।'

'कोठरी में कौन है ? बोलती क्यों नहीं सागर बहू ?'

'तुम कौन हो ? नाईन हो क्या ?'

'अरी मर ! मैं क्या नाईन हूं ?'

'फिर कौन हो ?'

'तेरी सौत ! सौत ! नयन बहू ।'

बहू का नाम नयनतारा था । लोग नयन बहू कहकर पुकारते थे और सागर को सागर बहू । सागर बोली, 'कौन, दीदी ! भला तुम क्यों नाइन जैसी होने लगीं ? वह तो गोरी है ।'

'अरी मर भी ! मैं क्या उससे भी काली हूं ? सौत ऐसी ही होती है । अभी चौदह वर्ष की ही है ना ।'

'चौदह वर्ष से क्या हुआ ? तुम तो सत्रह की हो । तुमसे अधिक मेरा रूप भी है और यौवन भी ।'

'रूप यौवन को बाप के घर बैठकर चाटना । मैं तुझसे एक बात पूछने आई हूं ।'

'क्या बात दीदी ?'

'बात क्या कहूं, तूने तो द्वार ही नहीं खोला । सन्ध्या से ही द्वार बन्द करके बैठ गई ।'

'मैं छिपकर सन्देस खा रही थी । क्या तुम नहीं खातीं ?'

'खा, खा । मैं पूछती थी कि एक और बढ़ोतरी हुई है क्या ?'

'और एक क्या ? पति ?'

'अरी नहीं ! ऐसा भी क्या कभी होता है ?'

'होता तो भला होता । नया तुम्हें देकर इन्हें अपने साथ ले जाती ।'

'अरी ऐसी बात जबान पर भी न लाना ।'

'और मन से, क्यों ?'

'जो मन में आए, मुझे कह ले ?'

'साफ-साफ नहीं कहती तो क्या उत्तर दूं बहिन ?'

'एक और बहू आई है क्या ?'

'कौन बहू ? किसकी बहू ?'

'वही बहू, मैं जानती हूं।'

'मैंने तो नहीं सुना।'

'वह कुल्टा।'

'मैंने वह भी नहीं सुना।'

'हमारी एक कुल्टा सौत और है, सुना नहीं तूने ?'

'नहीं तो।'

'वह जो पहिला विवाह हुआ था।'

'परन्तु वह तो ब्राह्मण की लड़की है।'

'ब्राह्मणी होती तो उसके साथ गृहस्थी न चलती ?'

'अगर पति तुम्हें विदा करके मेरे साथ गृहस्थी चलाएं, तो क्या तुम कुल्टा हो जाओगी ?'

'तू मुझे गाली क्यों देती है री ?'

'तो तुम किसी को गाली क्यों देती हो जी ?'

'अच्छा मैं जाकर ठकुरानी जी से कहती हूं। तू बड़े आदमी की लड़की है, इसलिए मुझे मनमानी कहती है।'

यह कहकर नयनतारा लौट गई। सागर बोली, 'दीदी, लौट आओ, द्वार खोलती हूं।' नयनतारा बहुत क्रुद्ध थी, परन्तु यह देखने के लिए कि सागर ने कितने सन्देस खाए हैं, लौट पड़ी। पर कोठरी में प्रवेश कर प्रफुल्ल को देखकर बोली, 'यह कौन है री ?'

'प्रफुल्ल।'

'प्रफुल्ल कौन ?'

'कुल्टा बहू।'

'अरे ! यह तो बड़ी सुन्दर है।'

'परन्तु तुमसे अधिक नहीं है।'

'चुप, तंग न कर। हां, तुझसे अधिक वास्तव में नहीं है।'

एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर गृह-स्वामी भोजन करने आए। गृहिणी भोजन कराने बैठी।

गृह-स्वामी ने पूछा, 'वह कुल्टा वहू गई क्या ?'

गृहिणी बोली, 'रात को कहां जाती ? क्या रात को मैं अपनी अतिथि बहू को भगा देती ?'

'अतिथि को अतिथिशाला में जाना चाहिए ?'

'मैंने कह दिया, मैं न भगा सकूंगी। भगाना हो तो तुम्ही भगाओ, परन्तु वह है बहुत सुन्दर।'

'सुन्दर भी कुल्टा ही होती है। खैर, मैं ही भगा दूंगा। व्रज को बुलाओ।'

एक नौकरानी व्रजेश्वर को बुला लाई। सुन्दर युवक था। वह पिता के पास विनीत भाव से आया।

हरिवल्लभ बोले, 'तुम्हारी तीन शादियां हुई हैं, जानते हो ?'

प्रथम विवाह एक बाग्दी (छोटी जाति) की लड़की से हुआ था ? फिर भी वह आज आई है। मैंने तुम्हारी मा से कहा, उसे झाड़ू मार कर बाहर कर दो, परन्तु औरतें औरतों पर हाथ नही उठा सकती ? यह तुम्हारा काम है। और कोई उसे स्पर्श नही कर सकता। तुम रात को उसे झाड़ू मारकर घर से निकाल देना, नही तो मुझे चैन न पड़ेगी।'

गृहिणी बोली, 'नही बेटा ! स्त्री पर हाथ न उठाना। पिता की बात माननी पड़ेगी तो क्या मा की बात न सुनेगा ? खैर, जो हो, भली तरह विदा करना।'

व्रज पिता से बोले, 'जो आज्ञा' और मां से 'अच्छा' कहकर खड़ा रहा। तभी गृहिणी ने अपने पति से पूछा, 'तुम जो बहू को निकाल रहे हो, तो वह खाएगी क्या ?'

'जो चाहे करे, चोरी, डकैती, भीख मांगे, मुझे क्या ?'

गृहिणी व्रजेश्वर से बोली, 'सुना तूने। बहू से यह बात भी कह देना, उसने पूछा है। इससे तुम्हारे पिता की नाक रह जाएगी।'

ब्रजेश्वर वहां से ब्रह्म ठकुरानी के पास पहुंचा। वह माला जप रही थी।

ब्रजेश्वर बोला, 'दादी !'

'क्या है भाई ?'

'आज एक नई खबर है ?'

'नई खबर ? सागर ने मेरा चर्खा तोड़ दिया ? वह अभी बच्ची है, तोड़ देने दो। उसे चर्खा कातने का शौक तो हुआ।'

'यह नहीं। मैं कहता हूं आज···

'सागर से कुछ न कहना। तुम सुखी रहो। मुझे चर्खे की क्या कमी है ?'

'तुम मेरी बात भी सुनोगी या अपनी ही कहती रहोगी।'

'मैं बूढ़ी हूं, कब तक जीऊंगी, खैर जाने दो··।'

'मेरी बात सुनो, नहीं तो तुम्हारे सब चर्खे तोड़ दूंगा।'

'क्या ? तो चर्खे की बात नहीं है क्या ?'

'नहीं ! मेरी दो ब्राह्मणी हैं, जानती हो ना ?'

'ब्राह्मणी ! जैसी नयन बहू है, वैसी ही सागर बहू है। मैं और कहानी कहां से कहूं।'

'अरे कहानी रहने दो···।'

'तुमने तो कह दिया रहने दो, पर वे कहा छोड़ती है। वह कबूतर-कबूतरी की कहानी जानते हो। लो, कहानी सुनो। एक पेड़ पर एक कबूतर-कबूतरी रहते थे···।'

'दादी क्या करती हो तुम ? मेरी बात सुनो।'

'तुम्हारी बात क्या है ? तुम कहानी सुनने आए हो ना। तुम लोगों को कोई और काम तो है नहीं।'

ब्रजेश्वर ने सोचा, बूढ़ी को पता नहीं कब प्रभु की प्राप्ति होगी। वह बोला, 'मेरी दो ब्राह्मणी हैं और एक बाग्दिन। वह बाग्दिन आज आई यहां है ?'

'राम, राम, बाग्दिन क्यों ? वह तो ब्राह्मण की लड़की है।'

'आई है न वह ?'

'तुम्हें आई क्यों नहीं है ?'

'वह कहां है ? मैं उससे भेंट करूंगा ।'

'भेंट कराकर मैं तुम्हारे मां-बाप की बुरी क्यों बनूं ? तुम कबूतर-कबूतरी की कहानी सुनो ।'

'भेंट की बात नहीं है । मां-बाप ने मुझसे उसे भगा देने को कहा है । भेंट हुए बिना उसे कैसे भगाऊं ? इसीलिए तुम्हारे पास आया हूं ।'

'भाई, मैं बुढ़िया, कृष्ण नाम जपती हूं । कहानी सुनो तो कह सकती हूं । मैं न बाग्दी को जानूं, न ब्राह्मणी को ।'

'हाय ! तुम्हें कब डाकू उठाकर ले जाएंगे ?'

'ऐसी बात न कह । डाकू बड़े भयानक होते हैं । भेंट करेगा ?'

'तो क्या मैं तुम्हारी माला देखने आया हूं ?'

'तो सागर बहू के पास जा ।'

'सौत सौत से मिलने देगी ?'

'जा, सागर ने तुझे बुलाया है । कोठरी में बैठी है । ऐसी लड़कियां बहुत नहीं हैं ।'

ब्रजेश्वर ब्रह्म ठकुरानी के यहां से सीधा सागर के ऊपर वाले कमरे में गया । वहां सागर के स्थान पर प्रफुल्ल बैठी थी । ब्रज ने अनुमान से समझा कि वह वही स्त्री थी ।

ब्रजेश्वर संकट में पड़ा । दोनों का स्त्री-पुरुष, एक दूसरे के अर्धांग, का सम्बन्ध था । यह सभी सम्बन्धों में घनिष्ठतर होता है । उन्होंने एक दूसरे को कभी देखा न था । अब कैसे बातें शुरू करें और पहिले कौन बोले, और जब उनमें से एक दूसरे को धक्का देकर घर से बाहर करने और दूसरा धक्का खाने के लिए आया था ।

पहिले दोनों में से किसी ने कुछ न कहा । अन्त में प्रफुल्ल ने तनिक मुस्कुराकर ब्रजेश्वर के चरणों पर प्रणाम किया ।

ब्रजेश्वर ने प्रणाम स्वीकार कर प्रफुल्ल की बांह पकड़कर उसे ऊपर उठा लिया और पलंग पर बैठाकर स्वयं उसके निकट बैठ गया ।

प्रफुल्ल के मुख का घूंघट बैठते समय हट गया । ब्रजेश्वर ने देखा वह रो रही थी । ब्रजेश्वर ने बिना समझे-बूझे ही प्यार से प्रफुल्ल का

मुख घूम लिया। 'तभी द्वार के अन्दर से एक मुख दिखाई दिया। मुख हंस रहा था। ब्रजेश्वर ने उधर घूमकर देखा, वह सागर थी। सागर ने स्वामी को एक ताला, एक चाबी दिखाए। सागर पति से अधिक बातें न करती थी। ब्रज कुछ समझे नहीं। सागर द्वार खींचकर ताला लगाकर भाग गई। ब्रजेश्वर बोले, 'सागर क्या करती हो ?' परन्तु वह जा चुकी थी। वह ब्रह्म ठकुरानी के घर पहुंची।

ब्रह्म ठकुरानी ने पूछा, 'क्या हुआ सागर बहू ? तुम आज यहां क्यों सोने आई हो ?' सागर चुप रही।

'तुम्हें ब्रज ने भगा दिया है क्या ?'

'न भगाते तो तुम्हारे पास क्यो आती ? आज मैं यहीं सोऊंगी।'

'अच्छा सो। अभी वह खुद तुझे बुलाएगा। आह ! तेरे दादा भी इसी तरह मुझे भगा दिया करते थे और फिर तुरन्त बुलाने आते थे। मैं क्रोध में नहीं जाती थी। फिर रह भी नहीं सकती थी। एक दिन क्या हुआ कि…।'

'दादी, एक कहानी कहो।'

'कौन सी कहूं, कबूतर-कबूतरी की ? अकेली सुनेगी ? वह नई बहू कहा है ? उसे भी बुला ला। दोनों सुनना।'

'वह पता नही कहा है। मैं उसे कहा खोजने जाऊंगी ? मैं अकेली ही सुनूंगी।'

ब्रह्म ठकुरानी कहानी कहने लगीं। सागर सो गई। ठकुरानी कुछ देर कहानी कहती रही, फिर सागर के सो जाने पर वह भी सो गई।

सवेरे सागर ने ताला खोला। ताला खोलकर वह चुपचाप फिर ठकुरानी का टूटा चरखा लेकर बुढिया के कान के पास चलाने लगी।

ताला खुलने का स्वर सुनकर प्रफुल्ल उठ खड़ी हुई। बोली, 'सागर ताला खोल गई, अब मैं जाती हूं। स्त्री न समझो तो दासी समझकर ही याद रखना।'

'अभी मत जाना, मैं एक बार पिताजी से बातें करलू।'

'क्या वह अपनी राय बदल देंगे ?'

'न बदलें, मुझे अपना कर्तव्य करना ही होगा। अकारण तुम्हारा

त्याग करने से मुझे पाप लगता है।'

'तुमने तो मेरा त्याग नहीं किया। तुमने तो ग्रहण ही किया है। मुझे अपनी शय्या पर स्थान दिया, यही मेरे लिए सब कुछ है। मैं प्रार्थना करती हूं कि मुझ दुखिया के लिए पिता से विवाद न करना। इससे मुझे सुख प्राप्त न होगा।'

'फिर भी तुम्हारे भरण-पोषण का प्रबन्ध तो उन्हें करना ही चाहिए।'

'जब उन्होंने मुझे त्याग दिया तो मैं उनसे भिक्षा न लूंगी। तुम्हारा निजी कुछ हो तो मैं ले सकती हूं।'

'मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। केवल यह अंगूठी है। इसे ले जाओ और बेचकर अपना काम चलाना। मैं कुछ कमाने की चेष्टा करूंगा। मैं तुम्हारे भरण-पोषण का वचन देता हूं।'

ब्रजेश्वर ने अंगूठी प्रफुल्ल को दे दी। प्रफुल्ल ने अंगूठी पहिनकर पूछा, 'यदि तुम मुझे भूल गए तब?'

'मैं अन्य सबको भूल सकता हूं, तुम्हें कभी न भूलूंगा।'

'आज के बाद यदि पहिचान न सके तो?'

'यह मुख मुझे कभी न भूलेगा।'

'मैं यह अंगूठी बेचूंगी नहीं। भूखी मरती हूंगी, तब भी नहीं। जब तुम मुझे न पहिचानोगे तब तुम्हें यह अंगूठी दिखाऊंगी। इस पर क्या लिखा है?'

'मेरा नाम।'

दोनों रोते-रोते एक दूसरे से विदा हुए।

नीचे आने पर प्रफुल्ल की भेंट सागर और नयन से हुई। नयनतारा बोली, 'दीदी कल रात कहां सोईं?'

'तीर्थ करके क्या कोई मुंह से कहता फिरता है?'

'तुम्हारा मतलब?'

सागर बोली, 'समझी नहीं? कल यह मुझे भगाकर लक्ष्मी बन बैठी और देखती हो उन्होंने इन्हें उपहार में यह अंगूठी दी है।'

अंगूठी देखकर नयन डाह से जल उठी। वह बोली, 'दीदी! ससुर ने

तुम्हारे प्रश्न का क्या उत्तर दिया, जानती हो ?'

प्रफुल्ल ब्रजेश्वर से आदर पाकर यह बात भूल गई थी। उसने पूछा, 'किस प्रश्न का उत्तर ?'

'तुमने पूछा था ना, तुम कैसे खाओगी ?' 'उन्होंने कहा है कि चोरी, डकैती करके खाने को कह दो।'

'देखा जाएगा।' कहकर प्रफुल्ल विदा हुई। बिना किसी से बात किए प्रफुल्ल चल दी। सागर द्वार तक उसके पीछे-पीछे गई। द्वार पर प्रफुल्ल ने कहा, 'आज जा रही हूं बहिन ! अब इस घर में पैर न रखूंगी। तुम जब अपने पिता के यहां जाओगी तो तुमसे वहीं आकर भेंट करूंगी।'

'तुम मेरे पिता का घर जानती हो ?'

'जान लूंगी ?'

'तुम वहां आओगी ?'

'मुझे अब लज्जा किसकी है ?'

'तुम्हारी मां तुमसे मिलने को खड़ी है।'

बगीचे के बाहर प्रफुल्ल की मा खड़ी थी। प्रफुल्ल उसके पास चली गई।

: ४ :

प्रफुल्ल और उसकी मा अपने घर लौट गईं। प्रफुल्ल की मां को बड़ा कष्ट हुआ। उसे ज्वर आ गया। औषधि का उचित प्रबन्ध न होने से ज्वर बढ़ता ही गया। फिर भी दोनों समय स्नान चलता रहा। कभी मिल जाने पर कुछ रूखा-सूखा खा लिया। अन्त में खाट पकड़ ली। ज्वर ने भयंकर रूप धारण कर लिया और अन्त मे उसका प्राणान्त हो गया। पड़ौस के उन्ही व्यक्तियों ने, जिन्होंने उसकी बदनामी की थी, उसका

दाह-संस्कार किया।

अब प्रफुल्ल अकेली रह गई। लोगों ने कहा, 'तुम्हें अपनी मां का श्राद्ध करना होगा।'

प्रफुल्ल बोली, 'इच्छा तो है, परन्तु रुपया नही है?'

मुहल्ले वाले बोले, 'तुम उसकी चिन्ता न करो, हम सब कर लेंगे।'

श्राद्ध की तैयारी हुई।

एक पड़ोसी बोला, 'मैं सोच रहा हूं कि श्राद्ध में तुम्हारे ससुर को भी बुलाया जाए।'

'कौन बुलाने जाएगा?'

एक दो प्रतिष्ठित व्यक्ति उन्हे बुलाने को अग्रसर हुए। प्रफुल्ल बोली, 'तुम्ही लोगों ने तो झूठी बात कहकर मेरा वह घर छुड़वाया था और तुम ही अब उन्हे बुलाने जाओगे। आखिर क्या मुह लेकर तुम उन्हें बुलाने जाओगे?'

वे बोले, 'वह अब भूल जाओ। हम लोग सब ठीक कर लेंगे। अब तुम अनाथ हो। तुम्हारे साथ हमारी कोई शत्रुता नही है।'

प्रफुल्ल उद्यत हो गई। वे दोनों हरिवल्लभ को निमन्त्रण देने गए। हरिवल्लभ बोले 'क्यों ठाकुर! तुम्ही लोगो ने तो समधिन को जातिच्युत किया था। अब तुम्ही मुझे बुलाने आए हो?'

'आप भी क्या बात करते है? अरे पड़ोसियों में तो ऐसा झगड़ा चलता ही रहता है। उस बात मे क्या कोई तथ्य था?'

हरिवल्लभ ने सोचा, 'यह सब धोखा है। इन लोगो ने उस लड़की से कुछ रुपया खाया है, परन्तु उसने रुपया पाया कहां से?' हरिवल्लभ ने निमन्त्रण की बात पर ध्यान नही दिया। उनका हृदय प्रफुल्ल की ओर से और भी कठोर हो गया।

पड़ोसी हारकर लौट गए। प्रफुल्ल ने यथारीति श्राद्ध करके पड़ोसियों की सहायता से ब्राह्मणों के भोजन का प्रबन्ध किया।

ब्रजेश्वर ने यह सुनकर सोचा, एक रात के लिए, छिपकर वहां जाए और प्रफुल्ल को देखकर रातोंरात लौट आए।

फूलमणि नाइन का घर प्रफुल्ल के घर के ही पास था। मां की

मृत्यु के बाद फूलमणि से प्रफुल्ल ने अपने घर सोने को कहा। फूलमणि विधवा थी। उसपर प्रफुल्ल की मां के उपकार भी थे। फूलमणि ने प्रफुल्ल का कहना स्वीकार कर लिया। प्रफुल्ल की मां के मरने के दिन से ही फूलमणि रात को प्रफुल्ल के पास सोने लगी।

फूलमणि के चालचलन को प्रफुल्ल नही जानती थी। फूलमणि प्रफुल्ल से दस वर्ष बड़ी थी। वह देखने-सुनने मे बुरी न थी, परन्तु कपड़े-लत्ते जरा चटक-मटक के पहिनती थी। निम्नश्रेणी की स्त्री, दूसरे बाल-विधवा, सो चरित्र शुद्ध नहीं रख सकी। प्राण चौधरी गाव के जमीदार थे। उनका कारिन्दा दुर्लभ चक्रवर्ती गाव मे कचहरी करता था। फूलमणि पर उनकी विशेष कृपा थी। यह सब प्रफुल्ल ने न सुना हो, सो बात नही, परन्तु और कौन अपना घर-द्वार छोड़कर उसके पास आकर सोता। प्रफुल्ल ने सोचा, 'वह अच्छी हो या बुरी, मैं बुरी नही हूं तो कोई मेरा क्या कर लेगा?'

श्राद्ध के दूसरे दिन फूलमणि कुछ देर से आ रही थी। रास्ते मे एक आम की बगिया थी। फूलमणि ने पेड़ के नीचे एक पुरुष खड़ा देखा। वह दुर्लभ था।

चक्रवर्ती महाशय ने फूलमणि से पूछा, 'क्यों, आज कैसा रहेगा?'

'हा, आज ही ठीक है। तुम दो प्रहर रात गए पालकी लेकर आना। द्वार पर धीरे से दस्तक देना। मैं द्वार खोल दूगी, परन्तु देखना, गोल-माल न होने पाए।'

'तुम डरो मत। वह शोर तो नही करेगी?'

'मैं धीरे से द्वार खोल दूंगी। उसके सोते ही मैं उसका मुंह कपड़े से बांध देना। फिर कैसे चिल्लाएगी?'

'इस प्रकार ले जाने से कितने दिन रहेगी?'

'एक बार ले जाने पर सब ठीक हो जाएगा। जिसका कोई है नही, जिसको अन्न के भी लाले हैं, वह खाने को पाएगी, कपड़ा पाएगी, रुपया पाएगी, सुहाग पाएगी, रहेगी क्यों नही? यह जिम्मा मेरा रहा। मुझे रुपए और गहने मिलने चाहिए।' दुर्लभ 'हां' करके चला गया। फूलमणि प्रफुल्ल के यहा गई। प्रफुल्ल को इस सर्वनाश की खबर न थी। वह

अपनी मां के विषय में सोचती-सोचती सो गई।

दो प्रहर रात गए दुर्लभ ने द्वार पर दस्तक दी। फूलमणि ने द्वार खोल दिया। दुर्लभ ने प्रफुल्ल का मुंह बांधकर उसे पालकी में डाल लिया। कहार पालकी उठाकर प्राण बाबू के बिहार-मन्दिर की ओर चल पड़े।

आधा घण्टा पश्चात् ब्रजेश्वर वहां प्रफुल्ल को खोजने पहुंचा। वह सबसे छिपकर रात में आया था। उसे वहां कोई न मिला। लाचार होकर वह लौट गया।

प्रफुल्ल की पालकी के कहार डाकुओं के भय से चुप थे। शोर-गुल के भय से पालकी के साथ अधिक लोग नहीं थे, केवल दुर्लभ और फूलमणि ही थे।

मार्ग में बड़ा भारी जंगल था। कहारों को सामने दो आदमी दिखाई दिए। कहारों को लगा, मानो साक्षात् यम चले आ रहे थे।

एक बोला, 'मुझे सन्देह है कि ये दोनों डाकू हैं?'

दूसरा बोला, 'रात में क्या भले आदमी घूमते हैं?'

'आदमी बलवान मालूम देते हैं।'

'उनके हाथों में शायद लाठियां भी हैं?'

'चक्रवर्ती महाशय क्या कहते हैं? पांव नहीं उठते। डाकुओं के हाथों आज जान गई।'

चक्रवर्ती बोला, 'वही तो! मैं जिस बात से डर रहा था, वही हुआ।'

उन दोनों व्यक्तियों ने आवाज दी, 'कौन है रे?'

कहार पालकी छोड़कर, 'बाप रे' कहकर जंगल में भागे। दुर्लभ चक्रवर्ती भी भागा। फूलमणि बोली, 'मुझे छोड़कर कहां जाते हो?' वह चिल्लाती हुई उसके पीछे दौड़ी।

जिन दो व्यक्तियों से ये डरकर भागे थे, वे दीनाजपुर की कचहरी में नौकरी की खोज में जा रहे थे। सवेरा निकट देखकर वे चल पड़े थे। कहारों को भागते देखकर वे खूब हंसे और फिर अपने रास्ते पर चले गए, परन्तु कहारों और चक्रवर्ती महाशय या फूलमणि ने फिरकर

नही देखा।

प्रफुल्ल ने पहिले ही अपने हाथ मुंह खोल दिए थे। प्रफुल्ल कुछ देर हतबुद्धि रही परन्तु फिर उसने सोचा कि बिना साहस के काम न चलेगा। उसने धीरे-धीरे पालकी का द्वार खोला। उसने देखा, दो आदमी आ रहे थे। फिर वे दोनों चले गए। तब प्रफुल्ल बाहर निकली। उसने देखा, वहा कोई नही था।

प्रफुल्ल ने सोचा कि उसे चुराकर ले जाने वाले वहा लौटेंगे। इसलिए जगल में छिप जाए। सवेरा होने पर जो होगा, देखा जाएगा। यह सोचकर वह जंगल में घुसी और कुछ देर मे सवेरा हो गया।

सवेरा होने पर प्रफुल्ल जंगल में इधर-उधर घूमने लगी। उसने देखा, एक पगडण्डी थी। प्रफुल्ल पगडण्डी पर चल पड़ी।

पगडण्डी पर प्रफुल्ल काफी दूर निकल गई, परन्तु ग्राम का कोई चिह्न नहीं मिला। फिर पगडण्डी भी लुप्त हो गई। आगे रास्ता नही था। चलते-चलते प्रफुल्ल ने देखा कि घोर जगल मे एक खंडहर था। प्रफुल्ल ने इटों के ढेर पर चढकर देखा, वहां दो एक कोठरियां भी थी। उसने सोचा, शायद वहा कोई मनुष्य हो। प्रफुल्ल ने खण्डहर मे प्रवेश किया, तो द्वार खुला था। प्रफुल्ल ने किसी वृद्ध के कराहने का शब्द सुना। प्रफुल्ल उसके पास गई। वृद्ध के ओंठ सूखे थे और आंखें गढों में धस गई थीं।

वृद्ध ने पूछा, 'तुम कौन हो बेटी'? क्या कोई देवी हो तुम? मृत्यु के समय मेरा उद्धार करने आई हो?'

प्रफुल्ल बोली, 'मैं अनाथ हूं। रास्ता भूलकर इधर आ निकली हूं। देखती हूं तुम भी अनाथ हो। क्या मैं तुम्हारी कुछ-सहायता कर सकती हूं?'

'बहुत सहायता कर सकती हो बेटी! मुरली वाले की जय। थोडा पानी पिलाओ बेटी!'

प्रफुल्ल ने थोड़ा पानी लाकर वृद्ध को पिलाया।

पानी पीकर वृद्ध कुछ स्वस्थ हुआ। प्रफुल्ल को जगल मे वृद्ध को . . कौतूहल हुआ। वह अधिक बोल नही सकता था, इसलिए वह

उसका परिचय न पा सकी। फिर भी वृद्ध ने कुछ बताया कि वह वृद्ध वैष्णव था और उसका अन्य कोई नहीं था। एक वैष्णवी थी, जो उसे मरता देख, उसका सब कुछ लेकर चम्पत हो गई। उसने प्रफुल्ल से प्रार्थना की, 'मुझे मरने पर घसीटकर समाधि में डाल देना।'

प्रफुल्ल ने स्वीकार कर लिया। तब वृद्ध बोला, 'यहां मेरा कुछ रुपया गड़ा है। उसे वैष्णवी नहीं जानती थी। जानती तो उसे भी ले जाती। यह रुपया यदि बिना किसी को दिए मर जाऊंगा तो मेरी आत्मा यहीं मंडराती रहेगी और मेरी मुक्ति न होगी। यह रुपया वैष्णवी को ही देता, परन्तु वह दुष्ट स्त्री भाग गई। अब वह तुम्हें दिए जाता हूं। बिछावन के नीचे एक तख्ता है, उसे उठाना। उसके नीचे एक सुरंग मिलेगी। साढ़ी से नीचे उतरना, डरना नहीं, रोशनी ले जाना। नीचे एक कोठरी है। उसकी खिड़की में तुम्हें रुपया मिलेगा।'

प्रफुल्ल वृद्ध की सेवा करती रही। वृद्ध बोला, 'गौशाला में एक गाय है। दूध दुह सको तो दुह लाओ।' प्रफुल्ल ने वही किया जो वृद्ध ने उससे कहा।

तीसरे प्रहर वृद्ध का प्राणान्त हो गया। प्रफुल्ल ने उसे लेजाकर समाधि में लिटाकर ऊपर मिट्टी डाल दी। फिर पास के कुएं पर स्नान कर आधी धोती पहिनी और आधी सुखा ली। तब वह फरसा-कुदाल लेकर वृद्ध के रुपए की खोज मे चली। वृद्ध उसे रुपया दे गया था, इसलिए उसे लेने में कोई दोष नहीं था।

प्रफुल्ल ने तख्ता उठाया। उसके नीचे एक गढ़ा दिखाई दिया। प्रफुल्ल ने देखा, उनमें उतरने की सीढ़ी थी।

प्रफुल्ल को चकमक, सलाई इत्यादि सब कुछ मिल गया। वह गोशाला से कुछ फूंस ले आई और उसे जलाकर सीढ़ी से उतरने लगी। फरसा-कुदाल उसने पहिले से ही नीचे फेंक दिए थे। नीचे एक कोठरी थी। उसने फूंस जलाया। कोठरी मे प्रकाश हो गए थे। प्रफुल्ल बताए हुए स्थान पर खोदने लगी। खोदते-खोदते 'ठन्' से आवाज हुई।

प्रफुल्ल को वहां पर्याप्त धन मिला। धन के घड़ों को अच्छी तरह

गाड़कर वह बाहर आकर सो गई। पुआल के बिछावन पर पड़ते ही उसे नींद आ गई।

: ५ :

डाकुओं के भय से फूलमणि दौड़ती हुई दुर्लभ के पीछे-पीछे भागी थी, परन्तु दुर्लभ को अपने प्राणों की पड़ी थी। वह फूलमणि की क्या चिन्ता करता? फूलमणि जितनी चिल्लाती थी, उतना ही दुर्लभ और तेज भागता था। कांटों के जंगल में दुर्लभ दौड़ा तो उसकी धोती ढीली हो गई और एक पैर कीचड़ में फंस गया। फूलमणि चिल्लाई, 'अरे नीच! एक स्त्री को जंगल में लाया और अब डाकुओं को सौंपकर भाग रहा है।' यह सुनकर दुर्लभ और जोरों से भागा। हारकर फूलमणि रोने और दुर्लभ को गाली देने लगी।

कुछ देर में फूलमणि ने देखा, वहां न तो डाकू थे और न ही दुर्लभ। कुछ देर सोचकर वह जंगल से बाहर निकल आई। पालकी खाली थी। वहा किसी को न पाकर वह घर की ओर चल पड़ी।

दिन निकलने पर वह घर पहुंची। फूलमणि चुपचाप द्वार बन्द करके सो रही। उसकी बहिन ने आकर उसे जगाया और पूछा, 'क्यों री, तू अभी आई है क्या?'

'क्यो, मैं गई कहां थी?'

'जाएगी कहां? ब्राह्मण के घर गई थी। इतनी देर में क्यों लौटी, मैं यह पूछ रही हूं।'

'तू तो अन्धी है। सवेरे तेरे सामने यहां आकर सोई थी। तूने देखा नहीं था क्या?'

'मैं सवेरे से तीन बार ब्राह्मण के घर जाकर देख आई हूं। वहा कोई न मिला। बता प्रफुल्ल कहां है?'

'चुप, दीदी चुप ! वह सब मत पूछ ।'

'क्यों, हुआ क्या ?'

'हमें ब्राह्मण देवताओं के कामों से क्या मतलब ?'

'यह क्या कह रही है तू ?'

'किसी से कहना मत, कल उसकी मां आकर उसे ले गई ।'

'ऐं ! उसकी मां आकर उसे ले गई !'

फूलमणि ने एक कहानी गढ़ी कि प्रफुल्ल के बिछावन पर उसने उसकी मां को देखा था। फिर कमरे में आंधी उठी। फिर वह कोई दिखाई न दिया। उसने अपनी बहिन से मना कर दिया कि वह यह सब किसी से न कहे।

उधर सवेरे उठकर प्रफुल्ल ने सोचा कि अब वह कहां जाए ? सोचा, घर लौट जाए, परन्तु वहां से डाकू फिर उठा ले जाएंगे। और वह धन कैसे ले जाए ? लोगों से उठवाकर ले गई तो बात फैलेगी। बहुत कुछ सोचकर प्रफुल्ल ने वहीं रहने का निश्चय किया। उसके लिए दुर्गापुर और जंगल में कोई अन्तर न था।

यह निश्चय कर प्रफुल्ल घर के काम पर जुट गई। घर मे झाड़ू लगाई। फिर रसोई बनाने का प्रबन्ध करने लगी, परन्तु बनाए क्या ? हांडी में चावल, दाल, वहां कुछ भी न था।

प्रफुल्ल एक मोहर लेकर बाजार की खोज में निकली। प्रफुल्ल बड़ी साहसी लड़की थी। वह एक पगडण्डी पर चल पड़ी। जंगल मे उसकी एक ब्राह्मण से भेंट हुई। ब्राह्मण रामनामी ओढ़े था। उसके मस्तक पर तिलक था। वह प्रफुल्ल को देखकर बोला, 'कहां जाओगी मा ?'

'मैं बाजार जाऊंगी।'

'इधर बाजार का मार्ग कहां है ?'

'तब फिर किधर है ?'

'तुम कहां से आ रही हो ?'

'इसी जंगल से।'

'इस जंगल में ही तुम्हारा घर है ?'

'हां।'
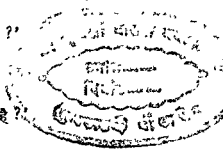
'फिर भी तुम बाजार का रास्ता नही जानतीं ?'

'मैं नई आई हूं।'

'इस जगल में स्वयं तो कोई आता नही, तुम कैसे आई ?'

'आप मुझे बाजार का रास्ता बता दीजिए।'

'बाजार जाने में एक प्रहर लगेगा। तुम अकेली न जा पाओगी। चोर-डाकुओं का भय रहता है। तुम्हारा और कौन है ?'

'कोई नहीं।'

ब्राह्मण कुछ देर प्रफुल्ल का मुख देखकर बोला, 'तुम अकेली बाजार मत जाओ, विपत्ति में पड़ोगी। यहां मेरी एक दुकान है। यदि इच्छा हो तो वहां से चावल-दाल खरीद लो।'

प्रफुल्ल बोली, 'ठीक है, परन्तु आप तो पण्डित मालूम देते हैं ?'

'पण्डित अनेक प्रकार के होते हैं। तुम मेरे साथ आओ मा !'

ब्राह्मण प्रफुल्ल को अपने साथ लेकर घने जगल मे गया। प्रफुल्ल डरी। तभी सामने एक कुटी दिखाई दी। कुटी का ताला बन्द था। ब्राह्मण ने ताला खोला। प्रफुल्ल ने देखा, दुकान नहीं थी, फिर भी हांडी भर चावल, दाल, नून, तेल थे। ब्राह्मण बोला, 'तुम जितना ले जा सको, ले जाओ।'

प्रफुल्ल आवश्यकतानुसार लेकर बोली, 'इनका दाम कितना हुआ ?'

'एक आना।'

'एक आना तो मेरे पास नही है।'

'रुपया है ? लाओ बाकी पैसे वापस कर दूंगा।'

'मेरे पास रुपया भी नही है।'

'तब बाजार क्या लेकर जा रही थी ?'

'एक मोहर है।'

'देखूं।'

प्रफुल्ल ने मोहर दिखलाई। ब्राह्मण ने देखकर लौटा दी। वह बोला, 'मोहर भुनाने लायक रुपए मेरे पास नहीं हैं। चलो, तुम्हारे साथ तुम्हारे घर चलूं, मुझे पैसे दे देना।'

'मेरे घर में भी पैसा नहीं है।'

'तो सभी मोहरें हैं ! खैर चलो देख आऊं। जब पैसा होगा, तब देना, मैं जाकर ले आऊंगा।'

'सभी मोहरें हैं' यह बात प्रफुल्ल को भली न लगी। उसने समझा कि यह चतुर ब्राह्मण समझ गया कि उसके पास बहुत मोहरें हैं। इसीलिए यह उसका घर देखने जाना चाहता है। प्रफुल्ल सब चीजें वही रखकर बोली, 'मुझे बाजार ही जाना होगा। कुछ कपड़ों की भी आवश्यकता है।'

ब्राह्मण हंसकर बोला, 'मां ! सोचती हो तुम्हारा घर देखकर मैं तुम्हारी मोहरें चुरा लूगा। क्या बाजार जाकर मुझसे बच पाओगी ? मैं पीछा न छोड़ूगा तो क्या करोगी ?'

प्रफुल्ल कांपने लगी।

ब्राह्मण बोला, 'मैं तुम्हारे साथ छल न करूंगा। मैं डाकुओं का सरदार हूं। मेरा नाम भवानी पाठक है।'

यह सुनकर प्रफुल्ल को काठ मार गया। भवानी पाठक का नाम उसने दुर्गापुर मे सुना था। वह विख्यात डाकू था। उसके भय से सारी वरेन्द्र-भूमि कांपती थी। प्रफुल्ल कुछ न बोली।

भवानी बोला, 'विश्वास न हो तो देखो।' यह कहकर वह एक नगाड़ा लाया और उस पर चोटें कीं। एक क्षण में लगभग पचास जवान वहां आ गए। वे बोले, 'क्या आज्ञा है सरदार ?'

भवानी बोला, 'इस लड़की को पहिचान लो। इसको मैंने मां कहा है। तुम सब भी इसे मां कहना और मां की ही तरह मानना। इसका कोई अनिष्ठ न हो। बस जाओ।'

यह सुनते ही डाकुओं का दल लुप्त हो गया।

प्रफुल्ल आश्चर्यचकित रह गई। वह समझ गई कि अब उसकी शरण के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं है। वह बोली, 'चलिए, आपको अपना घर दिखा दूं।'

सब सामग्री उठाकर वह आगे-आगे चली। उसके पीछे-पीछे भवानी पाठक चले। उस टूटे घर में पहुंचकर प्रफुल्ल ने बोझा उतारा और भवानी ठाकुर को सादर बिठाया।

भवानी पाठक बोले, 'इसी टूटे घर में तुम्हें ये मोहरें मिली थीं ?'

'जी हां।'

'कितनी मोहरें मिली ?'

'बहुत।'

'ठीक से बताओ कितनी हैं ? मुझे धोखा दोगी तो हमारे आदमी यहां आकर सब खोद लेंगे।'

'बीस घड़े।'

'यह धन लेकर तुम क्या करोगी ?'

'अपने घर ले जाऊंगी।'

'इन्हें तुम रख सकोगी ?'

'यदि आपकी सहायता पाऊं तो।'

'इस वन पर मेरा अधिकार है। इसके बाहर मेरी शक्ति नही है। इन्हें इस वन के बाहर ले जाने पर मैं तुम्हारी रक्षा न कर पाऊंगा।'

'तब मैं इस जंगल मे ही रहूंगी। आप मेरी रक्षा करेंगे ना ?'

'करूंगा, परन्तु इतना धन तुम करोगी क्या ?'

'लोग धन लेकर क्या करते हैं ?'

'भोग करते हैं।'

'मैं भी भोग करूंगी।'

भवानी ठाकुर सुनकर हंस पड़े। प्रफुल्ल लज्जित हो गई। भवानी बोले, 'मां! बच्चों जैसी तुम्हारी बात सुनकर हंसी आ गई। अभी तुमने कहा, तुम्हारा कोई नहीं है। फिर तुम किसके साथ भोग करोगी ? अकेले क्या ऐश्वर्य भोगा जाता है ?'

प्रफुल्ल ने सिर झुका लिया।

भवानी बोले, 'सुनो, कुछ लोग ऐश्वर्य पाकर भोग करते हैं, कुछ पुण्य-संचय करते हैं और कुछ नर्क का रास्ता बनाते हैं। तुम भोग नहीं कर सकती, क्योंकि तुम्हारे कोई है नहीं। या तो तुम पुण्य-संचय कर सकती हो, या नर्क का मार्ग बना सकती हो। बोलो, तुम्हें कौन-सा रास्ता पसन्द है ?'

प्रफुल्ल बोली, 'ये बातें तो डाकुओं के सरदार की जैसी नही हैं ?'

'नहीं, मैं केवल डाकुओं का सरदार मात्र नहीं ही हूं। मैंने तुम्हे मां कहा है। इस समय तुम्हारा जिसमें लाभ होगा, मैं वही कहूंगा। धन-भोग तुम नहीं कर सकतीं क्योंकि तुम अकेली हो। ऐसी दशा मे धन से तुम खूब पाप या पुण्य कर सकती हो। तुम क्या करना चाहती हो? वही मैं सुनना चाहता।'

'यदि कहूं कि मैं पाप करूंगी?'

'तब मैं अपने आदमियों के द्वारा यह धन तुम्हारे साथ इस जंगल के बहार भेज दूंगा। वन मे मेरे बहुत से अनुचर धन के लोभ में तुम्हारे साथ पापाचार करने को तैयार हो जाएंगे। तुम्हारी पाप-इच्छा होने पर मैं तुम्हें इसी क्षण यहां से विदा करने को बाध्य हूंगा। इस धन को मैं अपना नही समझता।'

'मेरे साथ यदि आप मेरा धन भेज देंगे तो मे री इसमें क्या हानि होगी?'

'तुम रख पाओगी इसे? तुम युवती हो, रूपवती हो। डाकुओं के हाथ से छुटकारा पा सकती हो तुम? पाप की लालसा पूरी नही होगी। उससे पहिले ही धन समाप्त हो जाएगा। धन कितना भी क्यो न रहे, समाप्त होने में देर नहीं करता। उसके बाद?'

'उसके बाद क्या?'

'नर्क का रास्ता साफ हो आएगा। लालसा रहेगी और उसकी तुष्टि का साधन न रहेगा। यही नर्क का रास्ता है। पुण्य-संचय करोगी?'

'बाबा! मैं गृहस्थ की लड़की हूं। पाप को पहिचानती भी नहीं। मैं क्यों पाप करने जाऊंगी? मैं कंगाल हूं। मुझे रोटी-कपड़े के अलावा कुछ न चाहिए। मुझे धन नही चाहिए। यह धन सब तुम ले लो। मेरे लिए मुट्ठी भर अन्न का प्रबन्ध कर देना बस।'

भवानी प्रसन्न होकर बोले, 'नही, यह धन तुम्हारा ही है। मैं इसे नहीं लूंगा।'

प्रफुल्ल आश्चर्यचकित हुई। भवानी बोले, 'सोचती होगी कि करता तो डकैती और लूट-पाट है, फिर मेरे साथ कपट क्यों? खैर, कारण अभी तुम्हें बताने की जरूरत नहीं है। यदि तुमने पापाचरण करना

चाहा तो मैं यह धन लूट भी सकता हूं। परन्तु अभी नही लूंगा। एक बार फिर पूछता हूं, यह धन लेकर तुम क्या करोगी?'

'मैं देख रही हूं कि आप ज्ञानी पुरुष हैं। आप मुझे परामर्श दीजिए कि मैं इस धन का क्या करूं?'

'शिक्षा देने में पांच-सात वर्ष लगेंगे। यदि चाहोगी तो मैं सिखा सकूंगा। इस बीच मे तुम्हें यह धन न छूना होगा। तुम्हें खाने-पहिनने का कोई कष्ट न होगा। तुम्हारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी, परन्तु मैं जो कहूंगा वह बिना विवाद मानना होगा। कहो स्वीकार है?'

'रहूंगी कहां?'

'यही। इस घर की कुछ और मरम्मत करा दूंगा।'

'यहां अकेली ही रहना होगा?'

'नहीं। मैं दो स्त्रियां और भेज दूंगा। वे तुम्हारे पास रहेंगी। उनसे डरना मत। इस जंगल का मालिक मैं हू। मेरे रहते तुम्हारा कभी कोई अनिष्ट न होगा।'

'आपकी शिक्षा कैसी होगी?'

'तुम पढना-लिखना जानती हो?'

'नहीं।'

'तो पहिले पढ़ना-लिखना सिखाऊंगा।'

प्रफुल्ल राजी हो गई। उस जंगल मे एक सहायक पाकर वह बहुत प्रसन्न हुई।

वहा से विदा होकर भवानी ठाकुर ने बाहर आकर देखा, एक व्यक्ति उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। भवानी ने पूछा, 'रंगराज! तुम यहा क्यों आए?'

'आपको ढूढने। आप यहा कैसे आए?'

'इतने दिन से जो खोजता था, वह आज पा गया।'

'राजा?'

'नहीं, रानी।'

'राजरानी खोजने की अब आवश्यकता नहीं रही। अंग्रेजी राज्य कायम हो गया है। सुना है कलकत्ते में हेस्टिंग्स साहब अपना राज्य

स्थापित कर रहे हैं।

मैं क्या खोजता था, तुम्हें मालूम है?'

'वह पा गए?'

'वह पाने योग्य वस्तु नहीं है। स्वयं बनाना होगा। ईश्वर लोहा बनाते हैं, मनुष्य तलवार गढ़ लेता है? अब पांच-सात वर्ष गढ़ना पड़ेगा। इस घर में मेरे सिवा कोई पुरुष न आए। लड़की युवती और सुन्दर है।'

'जो आज्ञा! जागीरदार के आदमियों ने रंजनपुर लूट लिया है। उसी के लिए मैं आपको खोज रहा था।'

'चलो! हम जागीरदार को लूटकर उसका धन गांव वालों को लौटा दें। गांव वाले मदद करेंगे?'

'कर सकते हैं।'

: ६ :

भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल के पास दो स्त्रियां भेज दीं। एक कहीं जाने आने के लिए और एक प्रफुल्ल के पास रहने के लिए।

दोनों ने प्रफुल्ल को प्रणाम किया। प्रफुल्ल ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है?'

एक दूसरी की ओर संकेत करके बोली, 'यह कुछ बहरी है। इसे गोबरा की मां कहते हैं।'

'गोबरा की मां! तुम्हारे कितने लड़के हैं?'

'मैं लड़की नहीं हूं। सब लोग झूठे ही मुझे लड़की कहते हैं?'

'तुम कौन जाति से हो?'

'जा सकूंगी। जहां कहोगी वहीं जाऊंगी?'

'तुम कौन लोग हो?'

'और लोग लेकर क्या करोगी ? मैं सब काम कर लूंगी।'

'कौन काम न कर सकोगी ?'

'पानी न भर सकूंगी। मेरे बदन में जोर नहीं है। कपड़ा भी बेटी तुम्हीं धो लेना।'

'और सब काम कर लोगी ?'

'बर्तन भी तुम्हीं माज लेना।'

'यह भी न कर सकोगी तो करोगी क्या ?'

'हां, घर झाड़ने का काम भी अब मुझसे नहीं होता।'

'तब तुमसे होता क्या है ?'

'और जो कहोगी सो करूंगी। रस्सी बटूंगी, पानी बहा दूंगी। अपनी जूठी पत्तल फेंक दूंगी। असल काम सब करूंगी। बाजार हो आऊंगी ?'

'दुकानदारों का हिसाब लगा लोगी ?'

'बुढ़िया हो गई हूं, अब वह नहीं होता। हां, जितना पैसा दोगी, वह खर्च कर आऊंगी। तुम यह न कह सकोगी कि मैंने यह नहीं किया, वह नहीं किया।'

'तुम्हारी जैसी गुणवान कहां पाऊंगी ?'

'यह तो तुम्हारा बड़प्पन है बेटी !'

प्रफुल्ल ने दूसरी स्त्री से पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'यह नहीं जानती बहिन !'

'यह क्या ? मां-बाप ने नाम नहीं रखा था क्या ?'

दूसरी ने कहा, 'रखा होगा, मुझे मालूम नहीं।'

'क्यों ?'

'इसकी समझ होने से पूर्व ही मैं उनसे बिछुड़ गई थी। बचपन में ही बच्चे पकड़ने वालों ने मुझे चुरा लिया था।'

'उन लोगों ने भी तो कोई नाम रखा होगा ?'

'कई नाम रखे।'

'क्या-क्या ?'

'मुंह जली, अभागी, चुड़ैल।'

गोबरा की मां बोली, 'जो मुझे मुंह जली कहे वह खुद चुडैल, वह स्वयं मुंह जली है, बांझ कही की।'

दूसरी हंसकर बोली, 'मैंने तुम्हें नही कहा।'

गोबरा की मां बोली, 'कहा कैसे नहीं, अवश्य कहा होगा। तू मुझे क्यों गाली देती है?'

प्रफुल्ल हंसकर बोली, 'तुम्हे नहीं, मुझे कहा है।'

'मुझे नहीं कहा तो कहने दो बेटी! क्रोध मत करना। इस ब्राह्मणी की जबान खराब है। फिर भी तुम क्रोध न करना।'

गोबरा की मा को अपने लिए उत्तेजित वीर और दूसरे के लिए शान्त देखकर प्रफुल्ल और युवती खूब हंसी। प्रफुल्ल दूसरी से बोली, 'तुम ब्राह्मणी हो? तब से क्यों नही बताया? मैं प्रणाम करती हूं तुम्हे।'

वह आशीर्वाद देकर बोली, 'मैं ब्राह्मण की लड़की अवश्य हूं, परन्तु ब्राह्मणी नहीं हूं।'

'वह कैसे?'

'मुझे कोई ब्राह्मण नही मिला।'

'तुम्हारा विवाह नही हुआ?'

'बच्चे पकड़ने वाले क्या विवाह करते है किसी का?'

'क्या तब से तुम उन्ही के बीच रही हो?'

'उन्होने मुझे एक राजा के यहां बेच दिया था।'

'तो राजा ने तुमसे विवाह नही किया?'

'राजकुमार करना चाहते थे, परन्तु गन्धर्व।'

'अपने से?'

'वह भी पता नही कितने दिन के लिए।'

'फिर?'

'मैं वहां से भाग आई।'

'फिर?'

'मैं वहां से रानी का गहना लेकर भागी थी। मार्ग मे डाकुओं ने मुझे पकड़ लिया। भवानी ठाकुर उनके सरदार थे। उन्होंने मेरी कहानी

सुनकर मेरा गहना नहीं लिया। साथ में और कुछ दे दिया। उन्होंने मुझे अपने यहां आश्रय दिया। मैं उनकी कन्या के समान हूं। उन्होंने एक तरह से मेरा विवाह कर दिया है।'

'एक तरह से क्या मतलब?'

'मेरे सर्वस्व श्री कृष्ण भगवान हैं।'

'वह कैसे?'

वह बोली, 'मेरा रूप, यौवन, प्राण सब उन्हीं के अर्पण हैं।'

'वह तुम्हारे पति हैं।'

'जो सम्पूर्ण रूप से मेरे अधिकारी हैं, वह वही हैं।'

प्रफुल्ल लम्बी सांस लेकर बोली, 'क्या जानूं? तुमने कभी पति नहीं देखा। इसी से यह कहती हो। पति देखा होता तो कृष्ण में मन न लगता।'

'श्री कृष्ण में सब लड़कियों का मन लग जाता है। उनका रूप, यौवन, ऐश्वर्य, सब-कुछ अनन्त है।'

वह भवानी ठकुर की शिष्या थी, इस बात का उत्तर न दे सकी। अनन्त जगदीश्वर हिन्दुओं के हृदय में सअन्त श्री कृष्ण बनकर निवास करते हैं। पति और भी सअन्त हैं। इसीलिए प्रेम पवित्र हो तो पति ईश्वर-प्राप्ति की पहिली सीढ़ी है। इसी से हिन्दू-स्त्रियों का पति ही परमेश्वर होता है।

प्रफुल्ल बोली, 'बहिन! यह सब मेरी समझ में नहीं आया। तुमने अपना नाम नहीं बताया।'

'भवानी ठाकुर ने निशि नाम रखा है। मैं दिवा की बहिन निशि हूं। स्त्री का देवता पति है। श्री कृष्ण सबके देवता हैं। मैं दो देवता क्यों बनाऊं बहिन?'

'स्त्रियों की भक्ति का कोई अन्त है क्या?'

'स्त्रियों के प्रेम का कोई अन्त नहीं है। भक्ति एक चीज है, प्रेम दूसरी।'

'मेरे लिए तो दोनों नए हैं। मैं तो आज तक एक को भी नहीं जान पाई।'

प्रफुल्ल रोने लगी। निशि बोली, 'मालूम देता है बहिन! तुमने बहुत दुःख पाया है।'

निशि ने प्रफुल्ल के आंसू पोंछ दिए। वह बोली, 'मैं यह नहीं जानती थी।' तब निशि ने जाना, ईश्वर-भक्ति की पहिली सीढ़ी पति-भक्ति ही है।

: ७ :

जिस दिन दुर्लभ चक्रवर्ती प्रफुल्ल को चुराकर ले आया था, उसी रात्रि को ब्रजेश्वर दुर्गापुर में प्रफुल्ल के यहां गया था। ब्रजेश्वर घुड़सवारी में बहुत तेज था। वह चुपचाप अन्धकार में घोड़े पर रवाना हुआ था। प्रफुल्ल की झोंपड़ी में जाकर उसने देखा, वहां कोई नहीं था। चारों ओर घोर अन्धकार था। पड़ोसी भी कोई न मिला, जिससे पूछा पूछता। सोचा, शायद किसी सम्बन्धी के यहां चली गई है। पिता के घर से वह उसी समय घर लौट गया।

दिन बीतने लगे। हरिवल्लभ की गृहस्थी चल रही थी। [illegible] पीते थे, परन्तु ब्रजेश्वर का जीवन सुखी न रहा। पहले [illegible] जाना। धीरे-धीरे मां को पता लगा। उन्होंने देखा, ब्रजेश्वर [illegible] नहीं क्नो,' कहकर थोड़ा कुछ खाकर उठ जाता था। [illegible] को मन्दाग्नि है। वैद्य बुलाने की बात हुई। ब्रज ने [illegible] मां से तो ब्रज ने हंसकर बात टाल दी, परन्तु [illegible] पड़ा। वृद्धा ने एक दिन ब्रजेश्वर से पूछा, [illegible] बहू का मुंह भी नहीं देखता। आखिर क्यों?'

ब्रज हंसकर बोला, 'एक तो [illegible] और बादल। इच्छा नही होती।'

'खैर, यह तो नयन बहू आने, [illegible]'

'तुम बनाती हो न!'

'मैं तो हमेशा से ऐसा ही बनाती हूं ।'

'अब तुम्हारे हाथ पक गए हैं ।'

'दूध क्यों नही पीता ? क्या वह भी मैं ही बनाती हूं ?'

'गायों का दूध अच्छा नही रहा ।'

'तू दिन भर क्या सोचता है ?'

'सोचता हूं कि कब तुम्हें गंगा ले जाऊं ।'

'बक-बक न कर । वह समय आने पर नीम के नीचे फूंक देगा । तो मुझे गंगा ले जाने के लिए तू इतना दुबला हो गया है ?'

'क्या यह कम चिन्ता की बात है ?'

'कल नदी के किनारे बैठकर तू आंखों से आंसू क्यों गिरा रहा था पगले ?'

'मैं रो रहा था कि नहाते ही तुम्हारा बनाया भोजन करना पड़ेगा। इसी से आंखें भर आईं ।'

'सागर को बुलवा दूं रसोई बनाने को ?'

'क्यों ? सागर का खाना क्या तुम जानती नही हो ?'

'तो फिर प्रफुल्ल को बुलावा दूं ।'

प्रफुल्ल का नाम सुनकर व्रजेश्वर के मुख की दशा बदली । वह बोला, 'वह तो बाग्दी है न ?'

'वह बाग्दी नहीं है । यह बात झूठ है । तुम्हारे पिता समाज से डरते हैं, परन्तु लड़के से तो समाज बड़ा नही है । मैं बात चलाऊं ?'

'नहीं । मैं अपने लिए पिता को समाज में बदनाम न करूगा ।'

उस दिन और बातें न हुईं । ब्रह्म ठकुरानी सब कुछ न समझ पाईं । प्रफुल्ल रूपवती थी । फिर उस रात्रि में व्रजेश्वर ने देखा था कि प्रफुल्ल जैसी सुन्दर थी वैसी ही मधुर भी थी । यदि प्रफुल्ल स्त्री का अधिकार प्राप्त कर वहां आ जाती तो उसके गुण सब पर छा जाते, परन्तु यह हुआ नही । प्रफुल्ल विद्युत् की तरह चमक कर सदा के लिए बादल में छिप गई । इसीलिए यह सब था । व्रजेश्वर का हृदय प्रफुल्लमय था । उसमें अन्य किसी के लिए स्थान नहीं था । वृद्धा यह नहीं समझ सकी ।

कुछ दिन पश्चात् फूलमणि की फैलाई हुई प्रफुल्ल के मरने की बात

हरिवल्लभ के यहां पहुंची। यहां समाचार आया कि प्रफुल्ल वायु-श्लेष्मा से मर गई। मरने के पहिले उसने अपनी मृत मां को देखा था। यह बात ब्रजेश्वर ने भी सुनी।

हरिवल्लभ ने श्राद्ध के लिए मना कर दिया। वह बोले, 'बाग्दी का श्राद्ध ब्राह्मण करेंगे?' नयनतारा ने भी स्नान किया। वह बोली, 'एक पाप कटा। दूसरी के लिए भी स्नान करपाऊं तो छाती ठण्डी हो।'

कुछ दिन में ब्रजेश्वर ने खाट पकड़ ली। रोग विशेष न था, कुछ-कुछ बुखार था। वैद्य की औषधि से लाभ न हुआ। ब्रजेश्वर ने प्राणों की बाजी लगा दी।

अब बात छिपी न रही। पहिले वृद्धा ने समझा। फिर गृहिणी ने भी समझा। गृहिणी ने समझा तो गृह-स्वामी भी जान गए। अब हरिवल्लभ की छाती पर चोट लगी। वह रोकर बोले, 'यह मैंने क्या किया? अपने ही हाथों अपना घर उजाड़ दिया।' गृहिणी बोली, 'लड़का न बचेगा तो विष खा लूंगी।' हरिवल्लभ ने प्रतिज्ञा की कि यदि प्रभु इस बार ब्रजेश्वर को बचा दें तो फिर उसकी इच्छा जाने बिना कोई कार्य न करेंगे।

ब्रजेश्वर बच गया। धीरे-धीरे वह निरोग हो गया। ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को भूलने का प्रयत्न करने लगा। उसके पिता प्रफुल्ल की मृत्यु के कारण थे, यह याद आने पर ब्रजेश्वर व्याकुल हो उठता था।

उधर प्रफुल्ल की शिक्षा आरम्भ हुई। निशि ने उसे अक्षर-ज्ञान कराया। वर्णमाला और अंक प्रफुल्ल ने उससे सीखे। फिर पाठक जी ने स्वयं अध्यापन-कार्य किया। पहिले व्याकरण पढ़ाया। दो-चार दिन पढ़ाकर वह बहुत विस्मित हुए। प्रफुल्ल की बुद्धि बहुत प्रखर थी। वह बहुत जल्दी-जल्दी पढ़ने लगी। उसके परिश्रम को देखकर निशि भी चकित हुई। वह दिन-रात व्याकरण पढ़ती। व्याकरण समाप्त हुआ। अब प्रफुल्ल काव्य पर छा गई। उस पर भी उसका अधिकार हो गया। रघुवंश, कुमारसंभव, नैषध, शाकुन्तलम उसने पढ़े। फिर उसने योगशास्त्र का अध्ययन किया और अन्त में भगवतगीता पढ़ी। पांच वर्ष में शिक्षा पूर्ण हुई।

साथ-साथ दूर। ा शिक्षा भी चली। गोबरा की मां केवल बाजार से सौदा ला देती थी। निशि भी सहायता अधिक न देती थी। प्रफुल्ल को सब काम स्वय करना पड़ता था। इसमें उसको कोई कष्ट नहीं होता था। उसके आहार के लिए भवानी ठाकुर ने मोटा चावल, नमक, घी और कच्चे केले का प्रबन्ध किया था। निशि वही खाती थी। प्रफुल्ल को भी उसमें बहुत आनन्द था, क्योंकि मां के यहां वह इतना भी नहीं पाती थी। परन्तु एक बात में प्रफुल्ल ने भवानी ठाकुर की बात न सुनी। एकादशी के दिन वह मछली अवश्य खाती थी। यदि गोबरा की मां मछली न लाती तो वह किसी तालाब से पकड़ लाती थी।

दूसरे वर्ष के आहार में प्रफुल्ल को नमक, मिर्च, भात और एकादशी को मछली मिलने लगी थी।

तीसरे वर्ष मिठाई, घी, मक्खन, फल इत्यादि सब कुछ मिलने लगा, परन्तु प्रफुल्ल वही नमक, मिर्च और भात खाती थी। वह निशि के साथ बैठकर खाती थी। निशि भी मिठाई बहुत न खाती थी। वह सब गोबरा की मां को दे देती थी।

चौथे वर्ष भोजन की व्यवस्था कुछ और अच्छी हुई, परन्तु प्रफुल्ल ने वही खाया, जो खाती थी।

पांचवें वर्ष इच्छानुसार खाने की आज्ञा मिली, परन्तु प्रफुल्ल ने भोजन में कोई परिवर्तन न किया।

वस्त्र पहिनने को भी इसी प्रकार पहिले वर्ष दो धोतियां मिलीं। दूसरे वर्ष चार। तीसरे वर्ष गर्मियों में मोटे गाढ़े की धोती और जाड़ों में मलमल की। चौथे वर्ष ढाका की धोतियां मिलीं। पांचवें वर्ष इच्छानुसार, परन्तु प्रफुल्ल मोटा गाढा ही पहिनती रही।

केशों के लिए तेल का निषेध रहा। बाल रूखे ही बांधने पड़ते थे। दूसरे वर्ष खुले रहे। तीसरे वर्ष सिर मुड़वा दिया गया। चौथे वर्ष नए केश निकले। भवानी ठाकुर ने सुगन्धित तेल लगाकर संवारने की आज्ञा दी। पांचवें वर्ष इच्छानुसार केश रखने की आज्ञा मिली। प्रफुल्ल ने पांचवें वर्ष बालों को हाथ भी न लगाया।

प्रफुल्ल ने अपने बदन को वायु, धूप, आग सहन करने योग्य बना

लिया था। भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल को एक और शिक्षा प्राप्त करने को कहा। भवानी ठाकुर बोले, 'तुम्हें मल्ल युद्ध सीखना होगा।'

प्रफुल्ल लज्जा से सिर झुकाकर बोली, 'ठाकुर ! यह मैं न सीख सकूंगी।'

'इसके बिना काम नहीं चलेगा।'

'क्यों ठाकुर ? स्त्री मल्ल-युद्ध क्यों सीखें ?'

'इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए।'

'मुझे मल्ल-युद्ध कौन सिखलाएगा ? पुरुष से मैं न सीखूंगी।'

'निशि सिखाएगी।'

प्रफुल्ल ने चार वर्ष तक मल्ल-युद्ध भी सीखा।

पहिले वर्ष भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल के पास किसी पुरुष को नहीं जाने दिया था। न उसे किसी पुरुष से बातें करने दीं। दूसरे वर्ष बातें करने पर प्रतिबन्ध न रहा। तीसरे वर्ष भवानी ठाकुर अपने चुने हुए शिष्यों को लेकर प्रफुल्ल के पास जाने लगे। वह उन लोगों से शास्त्रीय बातें करती थी। चौथे वर्ष भवानी ठाकुर अपने चुने हुए लठैतों से प्रफुल्ल का मल्ल-युद्ध कराते। पांचवें वर्ष सब बन्धन खुल गए। अब जब वह पुरुषों से बात करती तो उन्हें अपना पुत्र समझती थी।

इस प्रकार अतुल ऐश्वर्यशालिनी प्रफुल्ल भवानी ठाकुर के दिशा-दर्शन में सिद्धहस्त हुई। पांच वर्ष में सब शिक्षा प्राप्त हुई।

एकादशी के दिन मछली खाने के अतिरिक्त प्रफुल्ल ने भवानी ठाकुर की जो बात न मानी, वह था उसका परिचय। भवानी ठाकुर पूछकर भी कुछ न जान पाए।

पाच वर्ष का अध्यापन समाप्त कर भवानी ठाकुर प्रफुल्ल से बोले, 'पांच वर्ष की तुम्हारी शिक्षा समाप्त हुई। अब तुम अपना धन अपनी इच्छा से व्यय करो, मैं न रोकूंगा। मैं केवल राय दूगा। उसे तुम मानना, या न मानना। अपने खाने-पहिनने का प्रबन्ध अब तुम स्वयं करना। अब तुम कौनसा मार्ग अपनाओगी ?'

'कर्म करूंगी। ज्ञान मेरे लिए नहीं है।'

'ठीक। मैं यह सुनकर प्रसन्न हुआ, किन्तु कर्म अनासक्त होकर

करना। अनासक्ति क्या है, तुम जानती हो? इसका प्रथम लक्षण है इन्द्रिय-संयम। यह मैंने गत पांच वर्षों में तुम्हें सिखाया है। दूसरा लक्षण है निरहंकार। इसके बिना धर्माचरण नहीं हो सकता।

ज्ञान अहंकार है। जो कुछ करो, अपने गुण से हुआ है, यह मत सोचना। तीसरा लक्षण कर्म का फल श्रीकृष्ण को अर्पण कर देना है। अब बताओ मां, इस धन-राशि का क्या करोगी?'

'जब मैंने अपना सब कर्म श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया तो यह धन भी उन्हीं के चरणों पर अर्पित है।'

'सब का सब?'

'और क्या?'

'परन्तु ऐसा करके कर्म में अनासक्त न हो सकोगी। यदि आहार के लिए तुम्हें उद्योग करना पड़ा, तो आसक्ति होगी। तब या तो भिक्षा-वृत्ति अपनानी होगी या इस धन से अपना काम चलाना होगा। भिक्षा में भी आसक्ति है। इसलिए तुम इस धन से ही काम चलाना। शेष सब श्रीकृष्ण को अर्पण करना, परन्तु उनके चरणों में यह धन पहुंचेगा कैसे?'

'वह सर्वभूत मे स्थित हैं। मैं सर्वभूत में इसका वितरण करूंगी।'

'ठीक। भगवान ने यही कहा है?'

'परन्तु दान करने के लिए बड़े कष्ट और बड़े श्रम की आवश्यकता है। वह तुम कर सकोगी?'

'मैंने इतने दिन सीखा ही क्या है?'

'उस कष्ट की बात नही कर रहा हूं। कुछ दुकानदारी भी करनी पड़ती है। कुछ वेश, कुछ भोग, कुछ ठाठ की आवश्यकता होती है। उसमें बड़ा कष्ट है। वह सह सकोगी?'

'वह किस प्रकार?'

'सुनो! मैं डकैती करता हूं, तुम्हें बता चुका हूं।'

'इस धन में से कुछ आप भी ले लें और यह दुष्कर्म त्याग दें।'

'मेरे पास काफी धन है। मैं धन के लिए डकैती नहीं करता।'

'फिर किस लिए करते हैं?'

'मैं राज्य करता हूं।'

'डकैती से राज्य कैसे होता है ?'

'जिसके हाथ में राज-दण्ड होता है वही राजा है।'

'परन्तु राज-दण्ड तो राजा के हाथ में होता है।'

'इस देश में कोई.राजा नहीं है। मुसलमान समाप्त हो गए। अंग्रेज अभी आए नहीं। मैं यहां राजा बनकर दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करता हूं।'

'क्या आप यही डकैती करके करते हैं ?'

'सुनो समझाता हूं।'

भवानी ने देश की दुर्दशा का वर्णन किया। जमीदारों के अत्याचार बताए। उन्होंने बताया, 'वे बाकीदारों के घर लूटते हैं। वे बच्चो के पैर पकड़कर पटक देते हैं, युवकों की छाती बींध देते हैं, वृद्धों का वध कर देते हैं, युवतियों को कचहरी में लेजाकर नंगी कर देते हैं, मारते है उनके स्तन काट डालते हैं, उनका अपमान करते हैं।

मैं उन दुरात्माओं को दण्ड देता हूं। अनाथ दुर्बलों की रक्षा करता हूं। कैसे करता हूं, यह तुम दो दिन मेरे साथ रहकर देख लो।'

प्रफुल्ल का हृदय यह सुनकर भर आया। वह भवानी ठाकुर को धन्यवाद देकर बोली, 'मैं तुम्हारे साथ चलूंगी। कुछ धन उन दुखियो को भी दे आऊंगी।'

'मैं कह रहा था, इन्हीं कामों में दुकानदारी करनी चाहिए। मेरे साथ चलना है तो जरा ठाठ से चलना। संन्यासिनी बनकर यह काम न होगा।'

'मैंने कर्म श्रीकृष्ण को अर्पण कर दिया है। उनके काम के लिए जो करना होगा करूंगी।'

भवानी ठाकुर की इच्छा पूर्ण हुई। वह दल के साथ डकैती को निकले तो प्रफुल्ल धन का घड़ा लेकर साथ चली। निशि भी उनके साथ गई।

भवानी ठाकुर ने पांच वर्ष तक सान पर चढ़ाकर प्रफुल्ल को तीक्ष्ण-धार वाला अस्त्र बना लिया था। पुरुष होता तो अच्छा होता, परन्तु

प्रफुल्ल जैसे गुणों वाला पुरुष नहीं मिला। इतना धन भी किसी के पास नहीं था। धन की मार भी बहुत तीक्ष्ण होती है।

परन्तु भवानी ठाकुर ने एक भूल की। प्रफुल्ल एकादशी के दिन मछली क्यों खाती थी, इस बात पर ध्यान देकर विचार नहीं किया। खैर, अब प्रफुल्ल कर्म-शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ी।

: ८ :

वाग्दी की लड़की कहकर हरिवल्लभ द्वारा प्रफुल्ल को निकाले गए आज दस वर्ष हो गए थे। हरिवल्लभ राय के ये दस वर्ष अच्छे नहीं बीते। जागीरदार देवीसिंह का अत्याचार और ऊपर से डाकुओं का आतंक था। हरिवल्लभ के ताल्लुके का रुपया डाकुओं ने लूट लिया और देवीसिंह का लगान नहीं गया। देवीसिंह ने ताल्लुका नीलाम करा लिया। हेस्टिंग्स तथा गोविन्दसिंह की कृपा से सरकारी कर्मचारी देवीसिंह के दास थे। हरिवल्लभ का दस हजार का ताल्लुका देवीसिंह ने अढ़ाई सौ रुपए में खरीद लिया था। शेष लगान भी नहीं चुका। देनदारी बढ़ने लगी। देवीसिंह से तंग आकर, जेल के भय से, हरिवल्लभ ने दूसरी सम्पत्ति गिरवीं रखकर ऋण चुकाया। इससे आय बहुत घट गई और खर्च घटा नहीं। हरिवल्लभ की पूजा, उत्सव, अन्य कर्म, दान-धर्म, लाठी बाजी पहिले की ही तरह रहीं। डाकुओं के खजाना लूटने के बाद लठैत कुछ और बढ़ाने पड़े। खर्च का पूरा नहीं पड़ता था। सरकारी खजाने की कई किश्तें शेष रह गईं। जो सम्पत्ति बची थी, उसके भी बिक जाने की नौबत आ गई। ऋण-पर-ऋण लदता जा रहा था। सूद असल के बराबर हो गया था।

पचास हजार रुपया देवीसिंह का शेष रह गया। हरिवल्लभ रुपए प्रबन्ध न कर सके। हरिवल्लभ राय की गिरफ्तारी का परवाना

निकल गया।

ब्रजेश्वर रुपए के लिए अपनी ससुराल गया तो उसके ससुर बोले, 'भैया, मेरा रुपया तुम्हारे लिए ही है। मेरा और है कौन ? परन्तु यह जब तक मेरे पास है, तब तक है। तुम्हारे बाप को दे दूंगा तो क्या बचेगा ? महाजन सब ले लेंगे। तुम अपना धन क्यों नष्ट करना चाहते हो ?'

ब्रजेश्वर बोला, 'मुझे धन की आवश्यकता नहीं है। अपने बाप को बचाना मेरा धर्म है।'

ससुर बोले, 'तुम्हारे बाप के बचने से मेरी बेटी को क्या लाभ ? रुपया रहने से मेरी बेटी का दुःख दूर होगा, ससुर के रहने से नहीं।'

यह सुनकर ब्रजेश्वर को बहुत क्रोध आया। वह बोला, 'तो आपकी लड़की रुपया लेकर रहे। दामाद की आपको क्या आवश्यकता है ? मैं सर्वदा के लिए विदा होता हूं।'

तब सागर के पिता ने लाल आंखें करके ब्रजेश्वर का और अपमान किया। ब्रजेश्वर ने भी कड़ा उत्तर दिया। उसने चलने की तैयारी की। यह सुनकर सागर भयभीत हुई। सागर की मां ने दामाद को अन्दर बुलाया, बहुत समझाया, परन्तु सब व्यर्थ।

एकान्त में ब्रजेश्वर की सागर से भेंट हुई। उसने ब्रजेश्वर के पैर पकड़कर कहा, 'एक दिन ठहरो। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।'

ब्रजेश्वर ने क्रुद्ध होकर पैर खींच लिए। पैर खींचने मे कुछ जोर से सागर को पैर लग गया। सागर ने समझा, पति ने लात मारी। वह पैर छोड़कर खड़ी हो गई और बोली, 'मुझे लात मार रहे हो ?'

ब्रजेश्वर के 'लात मारी नहीं, लग गई,' यह कह देने से ही बात समाप्त हो जाती, परन्तु क्योंकि वह क्रुद्ध था इसलिए सागर की त्योरी देखकर उसका क्रोध भड़क गया। वह बोला, 'यदि मारी ही है तो क्या हुआ ? मेरा पैर तुम्हारे बाप ने भी एक दिन पूजा था।'

सागर क्रोध में अपने आपको भूल गई। वह बोली, 'मैं उसका प्रायश्चित करूंगी।'

'तो तुम बदले में लात मारोगी ?'

'मैं इतनी नीच नहीं हू, परन्तु यदि ब्राह्मण की बेटी हूं तो मेरा पैर…।'

सागर की बात पूरी भी न हुई थी कि पीछे से किसी ने कहा, 'नौकर की तरह दबाओगे।'

सागर भी शायद यही कहने जा रही थी। उसने बिना सोचे-समझे, कह दिया, 'गोद में रखकर नौकर की तरह दबाओगे।'

ब्रजेश्वर बोला, 'तो मेरा यह प्रण है कि जब तक वह स्थिति पैदा न होगी, तब तक तुम्हारा मुंह न देखूंगा। प्रतिज्ञा भंग करूं तो ब्राह्मण नहीं।' यह कहकर ब्रजेश्वर चला गया। सागर रोने लगी। तभी नौकरानी वहां आई। उसे देखकर सागर ने उससे पूछा, 'खिड़की से तू बोली थी क्या?'

'नहीं, मैं तो कुछ नहीं बोली।'

'तब खिड़की पर कौन था?'

तभी एक रूपवती और तेजस्विनी स्त्री ने कमरे में प्रवेश किया। वह बोली, 'खिड़की पर मैं थी।'

'तुम कौन हो?' सागर ने चकित होकर पूछा।

'क्या तुम भी मुझे नहीं पहिचानतीं?'

'नहीं। तुम कौन हो?'

'मैं देवी चौधरानी हूं।' वह स्त्री बोली।

नौकरानी कांपती हुई बैठकर रोने लगी। देवी चौधरानी बोली, 'चुप रह हरामजादी! रोई तो जबान खींच लूंगी।'

नौकरानी सिसकती हुई खड़ी हो गई। सागर को भी पसीना आ गया। वह चुपचाप उसकी ओर देख रही थी। जो नाम उन्होंने सुना, उसे बच्चा, बूढ़ा कौन नहीं जानता था? बड़ा भयानक नाम था, परन्तु तभी सागर हंस पड़ी। देवी चौधरानी के चेहरे पर भी मुस्कान खेल उठी। दोनों फिर बहुत देर तक ध्यानपूर्वक एक दूसरी की ओर देखती और बातें करती रहीं।

वर्षा काल की चांदनी रात थी। त्रिस्रोता नदी में बाढ़ आ रही थी। चन्द्रमा की किरणें नदी की लहरों पर चमक रही थीं।

किनारे से कुछ दूर एक बजड़ा बंधा था। बजड़े से कुछ दूर एक नाव थी। एक ओर बांसों पर पाल बिछा था। उस पर मल्लाह सो रहे थे। बजड़े की छत पर भी कोई था।

छत पर एक गलीचा बिछा था। वह बहुत सुन्दर था। उसपर चित्र बने थे। गलीचे पर एक स्त्री बैठी थी। उसके बालों पर चांद की किरणें पड़ रही थीं। बालों की सुगन्धि से आकाश भर उठा था। जूही का गजरा उसके बालों में बंधा था।

रमणी साक्षात् सरस्वती के समान वीणा बजा रही थी। चन्द्रमा की किरणें युवती के अलंकारों पर नृत्य कर रही थीं।

एकाएक उसके कर्ण-कुण्डल हिल उठे। सर्प जैसे उसके केश लहराने लगे। वीणा पर नट-रागिनी बजी और पाल पर सोए हुए मल्लाहों में से एक जाग उठा। वह चुपचाप आकर सुन्दरी के पास खड़ा हो गया।

उसने पूछा, 'क्या हुआ ?'

'दिखाई नहीं पड़ा ?'

'आ रहा है क्या ?'

स्त्री ने पुरुष को एक दूरबीन उठाकर दी। उसने दूरबीन से चारों ओर देखा। उसे एक बजड़ा दिखाई पड़ा। वह बोला, 'देख रही हैं ?'

'इधर और किसी बजड़े के आने की बात तो नहीं थी ?'

पुरुष फिर दूरबीन से इधर-उधर देखने लगा।

युवती बोली, 'रंगराज !'

'आज्ञा ?'

'क्या देख रहे हो ?'

'देखता हूं कितने लोग हैं।'

'कितने हैं ?'

'ठीक से पता नहीं चल रहा। अधिक नहीं हैं। नाव खोलूं ?'

'खोलो। अन्धेरे-अन्धेरे चुपचाप चले जाओ।'

रंगराज ने कड़क कर कहा, 'नाव खोलो।'

उस नाव पर पचास आदमी सोए हुए थे। रंगराज की आवाज सुनकर वे सब उठ बैठे। उन्होंने अपने-अपने हथियार संभाल लिए। सब तैयार होकर बैठ गए। नाव चुपचाप खुलकर बजड़े से आ लगी। रंगराज पाचों हथियारों से सज्जित होकर उसपर सवार हो गया। युवती बोली, 'रंगराज ! जो मैंने कहा, याद रखना।'

'याद है,' कहकर वह नाव पर बैठ गया। नाव चुपचाप किनारे-किनारे बढ़ चली।

जो बजड़ा रंगराज ने देखा था, वह बहता हुआ निकट आ गया था। नाव को बहुत दूर नहीं जाना पड़ा। बजड़े के पास पहुंचकर नाव किनारा छोड़कर उस बजड़े की ओर चली। शब्द जरा भी नहीं हो रहा था।

बजड़े की छत पर आठ सिपाही थे। उनमें दो व्यक्ति हथियारबन्द थे। शेष छ: वायु का आनन्द ले रहे थे। वे सो रहे थे। पहरे वालों में से एक ने नाव को बजड़े के निकट आते देखा। वह चिल्लाया, 'नाव दूर रक्खो।'

रंगराज बोला, 'तुम दूर रक्खो अपना बजड़ा।'

पहरेदार ने धमकाने को बंदूक छोड़ी। रंगराज हंसकर बोला, 'क्या पांडे जी के पास एक छर्रा भी नहीं है ? लो, मुझसे ले लो।' यह कहकर रंगराज ने पहरेदार को निशाना बनाया, परन्तु तुरन्त ही बन्दूक नीची करके कहा, 'अभी तुझे मारूंगा नहीं, केवल तेरी लाल पगड़ी उड़ाऊंगा।' उसने बन्दूक रखकर एक तीर चलाया, जिससे उसकी लाल पगड़ी उड़ गई। पहरेदार भयभीत हो उठा।

नाव बजड़े के पीछे लग गई। दस बारह आदमी बजड़े पर चढ़ गए। सोए हुए छ: पहरेदार बन्दूक की आवाज सुनकर उठ तो गए थे, परन्तु नींद में ही आक्रमणकारियों ने उन्हें बांध लिया। जगने वालों ने लड़ाई की, परन्तु बहुत साधारण। शीघ्र ही उन्हें भी बांध लिया गया। बजड़े में प्रवेश करना चाहा तो उसका द्वार बन्द था।

उसके अन्दर ब्रजेश्वर थे। वह ससुराल से घर लौट रहे थे। रास्ते में यह आफत आ गई।

रंगराज द्वार खटखटाकर बोला, 'दरवाजा खोलो महाशय!'

ब्रजेश्वर बोला, 'कौन है?'

रंगराज ने कहा, 'कोई बात नहीं। बजड़े पर डकैती हुई है?'

ब्रजेश्वर तनिक स्तब्ध रहे। फिर पुकारा, 'पांडे, तिवारी, रामसिंह।'

रामसिंह ने छत पर से उत्तर दिया, 'धर्मावतार! हम सबको बाध रखा है।'

ब्रजेश्वर हंसकर बोले, 'बड़े दु:ख की बात है जो तुम्हारे जैसे बहादुरों को भी बाध लिया। डाकुओं ने बहुत बड़ा अपराध किया। अच्छा घबड़ाओ नहीं, कल तुम्हारा प्रबन्ध होगा।'

रंगराज भी हंसकर बोला, 'मेरी भी यही राय है। अब आप द्वार खोलिए।'

'तुम कौन हो?'

'मैं डाकू हूं और आपसे द्वार खोलने की प्रार्थना करता हूं।'

'मैं द्वार क्यों खोलूं?'

'हम लोग आपको लूटेंगे।'

'क्या मुझे भी तुमने पहरेदार समझा है? मेरे हाथ में दुनाली बन्दूक है। जो पहिले घुसेगा, उसे जान से मार दूंगा।'

'एक आदमी नहीं घुसेगा। आप अपनी बंदूक से कितनों को मारेंगे? फिर आप ब्राह्मण हैं और मैं भी ब्राह्मण हूं। एक और ब्रह्महत्या होगी। व्यर्थ ब्रह्महत्या से क्या लाभ?'

'तो मैं ही वह पाप करूंगा।'

तभी बगल का द्वार तोड़कर दो डाकू अन्दर घुस गए। ब्रजेश्वर ने बन्दूक घुमाकर उनके मारी थी। उनमें से एक गिर पड़ा। तभी रंगराज ने सामने के द्वार पर दो लात मारी। द्वार टूट गया। रंगराज अन्दर घुसा। ब्रजेश्वर रंगराज को निशाना बनाने लगे तो रंगराज ने बन्दूक छीन ली। दोनों बलवान् थे, परन्तु रंगराज अधिक फुर्तीला था। ब्रजेश्वर फुर्ती से तलवार खींचकर हंसता हुआ बोला, 'देखो ठाकुर! मुझे ब्रह्महत्या का

भय नही है।' यह कहकर वह रंगराज पर झपटा। तभी टूटे द्वार से चार-पांच डाकू और आ गए। उन्होंने ब्रजेश्वर से तलवार छीन ली। दो ने उन्हें कसकर पकड़ लिए। एक डाकू रस्सी लेकर बोला, 'बांधना पड़ेगा क्या ?'

ब्रजेश्वर बोला, 'बांधो नही। मैं हार मानता हूं। क्या चाहते हो, बोलो मैं देता हूं ?'

'आपके पास जो कुछ भी है, सब लूंगा। पहिले शायद कुछ छोड़ देता, अब एक पैसा न छोड़ूंगा।'

'जो बजड़े में है ले जाओ। मैं बाधा नही डालता।'

डाकुओं ने सामान उठाना शुरू कर दिया। अब लगभग पच्चीस आदमी बजड़े पर थे। सामान कुछ था नही। पहिनने के कपड़े, पूजा के बर्तन, बस। तब ब्रजेश्वर बोला, 'सब ले चुके, अब जाओ।'

रंगराज बोला, 'जाता हूं, परन्तु आपको भी मेरे साथ चलना पड़ेगा।'

'मुझे कहां जाना होगा ?'

'हमारी रानी के पास।'

'तुम्हारी रानी कौन है ?'

'हमारी राजरानी।'

'वह हैं कौन ? क्या डाकुओं की भी राजरानी होती है ?'

'देवी रानी का नाम नही सुना तुमने ?'

'तो तुम लोग देवी चौधरानी के दल के हो ?'

'दल क्या ? हम रानी जी के सेवक हैं।'

'जैसी रानी, वैसे ही सेवक, परन्तु मुझे उनके दर्शन करने क्यों जाना होगा ? क्या मुझे बन्दी बनाकर कुछ वसूल करना चाहते हो ?'

'बजड़े पर कुछ नहीं मिला। आपको रोकने से शायद हमें कुछ मिले।'

'चलो मेरी भी चलने की इच्छा है। सुना है, तुम्हारी रानी देखने योग्य हैं ? वह युवती हैं ना ?

सुना है वह बहुत रूपवती है।'

'हमारी मां देवी के समान हैं।'

'चलो मैं भी देवी का दर्शन कर आऊं।'

ब्रजेश्वर रंगराज के साथ बाहर निकले। बजड़े के मल्लाह भय से पानी में कूद पड़े थे। ब्रजेश्वर उनसे बोले, 'तुम लोग बजड़े पर आओ, डरो नहीं। अल्लाह का नाम लो। तुम लोगों का सब कुछ सुरक्षित है।'

मल्लाह बजड़ पर चढ़ गए। ब्रजेश्वर रंगराज ने बोला, 'मेरे पहरेदारों के बन्धन खोल दो।'

रंगराज बोला, 'यदि इन्होंने खुलकर हम पर आक्रमण किया तो हम आपका सिर काट लेंगे। आप इन्हें यह समझा दें।'

ब्रजेश्वर ने पहरेदारों को समझा दिया। उन्हें आदेश दिया, 'तुम लोग यहीं रहना, कहीं जाना नहीं। मैं अभी लौटकर आता हूं।'

ब्रजेश्वर नाव पर चढ़ गए। नाव के मांझियों ने देवी रानी की जय-ध्वनि करके नाव को किनारे की ओर बढ़ा दिया।

: १० :

'ब्रजेश्वर ने रंगराज से पूछा, 'तुम्हारी रानी जी कहां रहती हैं?'

'वह बजड़ा देख रहे हो। वह उन्हीं का बजड़ा है।'

'वह बजड़ा! मैंने तो उसे अंग्रेजी जहाज समझा था। वह रंगपुर को लूटने आया था। इतने बड़े बजड़े में रहती है तुम्हारी रानी जी?'

'वह रानी की तरह रहती हैं। इसमें सात कमरे हैं।'

'इतने कमरों में कौन रहता है?'

'एक में उनका दरबार है। एक उनका शयन-गृह है। एक में दासियां रहती हैं। एक स्नान-गृह है। एक रसोई है। एक फाटक है।'

नाव बजड़ से जा लगी। अब देवी चौधरानी छत पर नहीं थी। नाव के निकट आने पर वह कमरे में चली गई थी। रंगराज ने द्वार पर

'रानीजी की जय' कहा । अन्दर से देवी ने पूछा, 'क्या समाचार है ?'

'सब मंगल है ।'

'कोई घायल तो नहीं हुआ ?'

'कोई नही ।'

'उन लोगों मे से कोई मरा तो नहीं ?'

'कोई नही । आपकी आज्ञानुसार कार्य हुआ है ।'

'उनका कोई आदमी घायल हुआ है ?'

'दो पहरेदारों को साधारण चोट आई है ।'

'कुछ माल मिला ?'

'सब ले आया हूं । कुछ है नही ।'

'बाबू ?'

'बाबू को पकड़ लाया हूं ।'

'प्रस्तुत करो ।'

रंगराज ने ब्रजेश्वर को द्वार पर खड़ा कर दिया ।

देवी ने पूछा, 'आप कौन हैं ?'

ब्रजेश्वर निर्भय व्यक्ति था । जिस देवी चौधरानी के नाम से पूरा उत्तरी बंगाल कांपता था, उसके पास आकर उसे हंसी आ गई । उसने मन में कहा, 'पुरुष भी कभी स्त्री से डरते हैं ? स्त्री पुरुष की दासी है ।' उसने हंसकर उत्तर दिया, 'परिचय जानकर क्या करेंगी आप ? मेरे धन से आपको मतलब था, वह आपने ले लिया । नाम से क्या रुपया मिलता है ?'

'मिलेगा क्यों नही ? आप किस हैसियत के आदमी हैं, यह पता लगने पर रुपया निकलेगा ।'

'क्या इसीलिए मुझे पकड़वाकर मंगवाया है ?'

'नहीं तो आपकी क्या आवश्यकता थी ?'

देवी पर्दे की आड़ मे खड़ी थी । किसने देखा कि इस बीच में उसने कितनी बार अपनी आंखों के आंसू पोंछे

'मैं यदि कहूं कि मेरा नाम दुखी राम चक्रवर्ती है तो आप विश्वास करेंगी ?'

'नहीं।'

'तब पूछने से क्या लाभ ?'

'मैं देखना चाहती हूं कि आप कितना सत्य बोलते है ?'

'मेरा नाम कृष्ण गोविन्द घोषाल है।'

'यह भी गलत है।'

'दयाराम बख्शी है ?'

'तुम्हारा यह नाम भी नहीं है।'

'मेरा नाम ब्रजेश्वर राय ?'

'यह हो सकता है।'

तभी देवी के पास एक और स्त्री चुपचाप आकर बैठ गई। वह उससे बोली, 'आपका गला बैठ गया है ?'

देवी के आंसू अब रुक न सके। वर्षाकाल में खिले फूलों से जैसे बूंद टपकती हैं, वैसे ही देवी की आंखो से टपाटप आंसू गिरने लगे। देवी उस स्त्री से बोली, 'मैं अभिनय नहीं कर पाऊंगी, अब तू बोल। सब जानती तो है।' यह कहकर वह दूसरे कमरे में चली गई। वह स्त्री देवी का आसन ग्रहण कर बातें करने लगी। वह स्त्री निशि ठकुरानी थी।

निशि बोली, 'अब तुम सच बोले। तुम्हारा नाम ब्रजेश्वर राय ही है।'

ब्रजेश्वर चकरा गए। वह परदे के अन्दर कुछ देख नहीं पा रहे थे, परन्तु स्वर सुनकर उन्हें दोनो आवाजों में अन्तर प्रतीत हुआ। वह आवाज बड़ी मीठी थी। यह उतनी मीठी नहीं थी। ब्रजेश्वर बोले, 'परिचय जानती हैं तो मोल-भाव कर लीजिए। मुझे आप किस शर्त पर छोड़ेंगी ?'

'एक कानी कौड़ी देने पर। पास मे हो तो देकर चले जाइए।'

'इस समय तो कानी कौड़ी भी नहीं है।'

'बजड़े से ले आइए।'

'बजड़े पर जो कुछ था वह आपके आदमी ले आए। शेष कुछ नहीं है वहां।'

'मल्लाहों से उधार मांग लीजिए।'

'उनके पास कानी कौड़ी भी नही रहती।'

'तब जब तक कीमत न चुकाइएगा, बन्दी रहना होगा।'

व्रजेश्वर ने सुना, अन्दर किसी ने कहा, 'रानी जी ! यदि एक कानी कौडी इस व्यक्ति का मूल्य है तो मुझ से ले लीजिए और इसे मेरे हाथ वेच दीजिए।'

रानी बोली, 'ले-ले, परन्तु तू करोगी क्या ? ब्राह्मण है, पानी भरेगा नही, क्या करेगा ?'

रमणी बोली, 'मेरा रसोइया चला गया है। यह रसोई बनाएगा।'

निशि बोली, 'सुना आपने ? आप बेच दिए गए। मैं कानी कौड़ी पा गई। आपको अपने खरीदार के पास रसोई बनानी होगी।'

व्रजेश्वर ने पूछा, 'वह कहां है ?'

'वह स्त्री है, वाहर नही आ सकती। आप अन्दर आइए।'

व्रजेश्वर ने कमरे मे प्रवेश किया। वहा की सजावट देखकर वह विस्मित हो गए। कमरे की दीवारों पर अद्‌भुत चित्रकारी थी।

व्रजेश्वर ने पूछा, 'रानी जी को क्या कहकर आशीर्वाद दूं ?'

'मैं रानी नही हूं।'

व्रजेश ने देखा, वह जिससे वात कर रहे थे, यह उसकी आवाज नहीं थी। हो भी सकती थी, क्योकि स्त्री अपनी आवाज वदल सकती है। फिर चौधरानी इतनी मायाविनी न होती तो डकैती कैसे कर सकती थी ? उसने पूछा, 'अभी मैं जिनसे वातें कर रहा था, वह कहां गई ?'

सुन्दरी बोली, 'तुम्हें आने की आज्ञा देकर वह सोने के लिए चली गई, परन्तु तुम्हे क्या करना है वह मैं बताऊंगी ?'

'तुम कौन हो ?'

'तुम्हारी मालकिन।'

'मेरी मालकिन !'

'मैंने अभी-अभी तुम्हे कानी कौड़ी देकर खरीदा है।'

'तो तुम्हें क्या कहकर आशीर्वाद दूं ?'

'आशीर्वाद के बहुत से तरीके होते है ?'

'हां, सधवा, विधवा, पुत्रवती…।'

'मुझे शीघ्र मरने का आशीर्वाद दीजिए।'

'मैं यह आशीर्वाद नहीं दे सकता। तुम्हारी एक सौ तीन वर्ष की आयु हो।'

'मेरी आयु पचीस वर्ष है। तुम अठत्तर वर्ष मेरी रसोई बनाओगे?

'पहिले एक दिन तो बनाऊं। यदि बनवा सकोगी तो अठत्तर वर्ष तक भी बनाऊंगा।'

'बैठो। कैसी रसोई बनाते हो?'

व्रजेश्वर गलीचे पर बैठ गये। सुन्दरी ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है?'

'वह तो तुम जानती ही हो, मेरा नाम व्रजेश्वर है। तुम्हारा नाम क्या है?'

तुम्हारा गला रुंधा क्यों है? क्या तुम्हारा मुझसे कोई पुराना परिचय है?'

'मैं तुम्हारी मालकिन हूं। मुझसे 'आप' कहकर बातें करो।'

'जी, अब ऐसा ही होगा। आपका नाम क्या है?'

'नाम मेरा पांच कौड़ी है, पर तुम मेरे नौकर हो। नाम लेकर न पुकारना। क्या मैं भी तुम्हारा नाम लेकर न पुकारूं?'

'तब मैं 'जी' कैसे कहूंगा?'

'मैं तुम्हें रामधन कहूंगी। तुम मुझे मालकिन कहना। अब बोलो, तुम्हारा घर कहां है?'

'एक कौड़ी में खरीदे दास का इतना परिचय जानने की क्या जरूरत है?'

'चलो न बताओ। रंगराज से पूछ लूंगी। तुम राढ़ी हो, या वारेन्द्र या वैदिक ब्राह्मण?'

'मैं कुछ भी सही। मेरे हाथ की रसोई तो खायेंगी ही आप?'

'यदि तुम मेरी श्रेणी के न होगे, तो मैं तुम्हारे हाथ की रसोई कैसे खाऊंगी? तुम्हें दूसरा काम दूंगी।'

'दूसरा क्या काम होगा?'

'पानी भरना, लकड़ी काटना, बहुत काम हैं।'

'मैं राढ़ी हूं।'

'तब तो तुम्हें पानी भरना और लकड़ी काटनी होगी। मैं वारेन्द्र हूं। तुम कुलीन राढ़ी हो या वंशज ?'

'ये सब बातें तो विवाह के समय पूछी जाती हैं। क्या मेरा विवाह कराइएगा आप ? वैसे मैं विवाहित हूं।'

'विवाहित हैं ? कितने विवाह हुए हैं ?'

'पानी भरना पड़ेगा तो भरूंगा, परन्तु इतना परिचय नहीं दूंगा।'

पांच कौड़ी रानी को पुकारकर बोली, 'रानी जी ! ब्राह्मण बड़ा हठी है। बात का उत्तर नहीं देता।'

दूसरे कमरे से निशि बोली, 'बेंतें लगाओ' तभी एक दासी लपलपाती बेंत मसनद पर रख गई। पांच कौड़ी ने रूमाल में हंसी रोककर दो बार कालीन पर बेंत को फटकारा और ब्रजेश्वर से बोली, 'देख रहे हो ? कितनी लचकदार है यह बेंत ?'

ब्रजेश्वर मुस्कराकर बोले, 'आप सब कुछ कर सकती हैं। पूछिए क्या पूछती हैं ?'

'अब तुम्हारा परिचय लेकर क्या होगा ? तुम्हारे हाथ की रसोई तो खानी नहीं है। तुम और क्या कर सकते हो, वह बताओ ?'

'आज्ञा दीजिए। आप क्या कराना चाहती हैं ?'

'पानी खींचकर ला सकते हो ?'

'नहीं। यह काम मैंने कभी किया नहीं।'

'लकड़ी काटकर ला सकते हो ?'

'नहीं। यह भी मुझसे नहीं होगा।'

'बाजार से सामान खरीद कर ला सकते हो ?'

'यह काम कुछ कर सकता हूं।'

'कुछ से काम नहीं चलेगा। पखा झल सकते हो ?'

'हां इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

'तो यह पंखा लेकर हवा करो।'

ब्रजेश्वर पंखा झलने लगा। पांच कौड़ी बोली, 'क्या तुम पैर भी दबा

सकते हो ?'

ब्रजेश्वर ने सोचा शायद डाकुओं की सरदार को प्रसन्न करके उसे मुक्ति मिल सके। वह बोला, 'आप जैसी सुन्दरी के पैर दबाने हों तो मैं अपना सौभाग्य ......'

'तब जरा दबाओ।' कहकर पांच कौड़ी ने अपना पैर ब्रजेश्वर की जांघ पर रख दिया।

ब्रजेश्वर को पैर दबाना पड़ गया। वह लाचारी में पैर दबाने लगे। साथ ही सोचने लगे, 'यह ठीक नहीं हुआ, प्रायश्चित्त करना होगा, परन्तु किसी प्रकार यहां से छुटकारा तो मिले।'

पांच कौड़ी बोली, 'रानी जी, तनिक इधर आइए।'

देवी के आने की आहट सुनकर ब्रजेश्वर ने पैर हटा दिया। पाच कौड़ी हंसकर बोली, 'यह क्या ? भागते क्यों हो ?'

पांच कौड़ी ने स्वाभाविक स्वर में यह बात कही थी। ब्रजेश्वर ने विस्मित होकर अपने से कहा, 'यह तो पहिचानी हुई आवाज है।' उसने साहसपूर्वक पांच कौड़ी के मुख का रूमाल हटा दिया। पांच कौड़ी खिलखिलाकर हंस पड़ी। ब्रजेश्वर विस्मित होकर बोले, 'यह क्या ? तुम ! सागर !'

'हां ! मैं सागर हूं। गंगा नहीं, यमुना नहीं, ताल-तलैया नहीं; साक्षात् सागर हूं। तुम्हारा अभाग्य था जो तुम किसी पर स्त्री के आनंदपूर्वक पैर दबा रहे थे और जब घर की स्त्री ने पैर दबाने को कहा था तो क्रुद्ध होकर चले आए थे। खैर, मेरी बात पूरी हो गई और आपकी भी। आपने मेरा पैर दबाया है, अब आप मेरा मुंह देख सकते हैं। अब चाहे चरणों में स्थान दें या त्याग दें। आपने यह भी देख लिया कि मैं ब्राह्मण की बेटी हूं ?'

: ११ :

ब्रजेश्वर ने सहमे हुए स्वर में पूछा, 'सागर ! तुम यहां कैसे ?'

सागर बोली, 'सागर के स्वामी, आप यहां कैसे ?'

'मैं तो बन्दी हू । क्या तुम भी बन्दी हो ? मुझे यहां पकड़कर लाया गया है ? क्या तुम्हें भी इसी प्रकार लाया गया है ?'

'मैं बन्दी नहीं हूं और न ही मुझे कोई पकड़कर लाया है । मैंने स्वयं अपनी इच्छा से देवी रानी की सहायता ली है । आपसे पैर दबाने के लिए मैं देवी रानी के राज्य में आई हूं ?'

तभी निशि वहां आ गई । उसके वस्त्राभूषणों की चमक देखकर ब्रजेश्वर ने समझा शायद वही देवी रानी है । वह उठ खड़ा हुआ ।

निशी बोली, 'डकैत होने पर भी स्त्रियों को इतने सम्मान की आवश्यकता नहीं होती । आप बैठिए । अब जान गए कि आपके बजड़े को क्यों रोका गया था ? सागर का प्रण पूरा हो गया । अब यदि आप यहां से जाना चाहें तो जा सकते है । आपका सब सामान बजड़े पर भेजा जा रहा है, परन्तु सागर का क्या होगा ? अब यह बाप के यहां कैसे लौटेगी ? इसे आप अपने साथ ले जाइए ।'

ब्रजेश्वर की समझ में कुछ न आया । तब क्या डकैती झूठी थी ? क्या ये लोग डाकू नहीं हैं ? उसने पूछा, 'तुम लोगो ने मुझे खूब मूर्ख बनाया । मैंने समझा था कि मेरे बजड़े पर देवी चौधरानी के दल ने डाका डाला है ।'

निशि बोली, 'यह देवी चौधरानी का ही बजड़ा है । देवी रानी सच मुच डकैती डालती हैं ?'

'देवी रानी डकैती डालती है ? तो क्या आप देवी चौधरानी नहीं हैं ?'

'जी नहीं । यदि आप उनके दर्शन करना चाहें तो वह दर्शन दे सकती हैं, परन्तु पहिले जो कहती हूं, वह सुनिए । हम डकैती ही करते हैं, परन्तु आपसे ऐसा कोई अभिप्राय नहीं था । हमें केवल सागर की प्रतिज्ञा पूर्ण करानी थी । अब बताइए सागर घर कैसे जाए ?'

'जिस तरह आई थी, उसी तरह जाए।'

'यह रानी जी के साथ आई थीं।'

'मैं भी वहीं से आ रहा हूं। वहां तो मैंने रानी जी को कहीं नहीं देखा।'

'आपके चले आने के बाद रानीजी वहां पहुंची थी।'

'तब इतना शीघ्र यहां कैसे पहुंच गईं?'

'हमारी नाव देखी है आपने। उसमें पचास डांडे एक साथ लगते हैं।'

'तब आप ही इन्हें नाव पर पहुंचा आइए।'

'इसमें कठिनाई है। वह बिना किसी से कहे आई हैं। लौटने पर घर भर पूछ-ताछ करेगा। आपके साथ जाने पर कोई कुछ न कहेगा।'

'चलो यही सही। आप नाव तैयार करायें।'

'अभी कराती हूं।' कहकर निशि वहां से चली गई।

एकान्त पाकर ब्रजेश्वर ने पूछा, 'सागर! तुमने यह प्रतिज्ञा क्यों की थी?'

सागर मुंह ढांपकर रोने लगी। वह सिसक-सिसक कर बहुत रोई। फिर बोली, 'पीछे देवी रानी सुन रही थीं ना!'

ब्रजेश्वर ने पूछा, 'सागर, तुमने मुझे बुलाया क्यों नहीं? बुला लेती तो सब समाप्त हो जाता।'

'कर्म का भोग, परन्तु मैंने न पुकारा तो तुम क्यों नहीं लौटे?'

'तुमने मुझे भगा दिया था। बिना बुलाए कैसे आता?'

अन्त में ब्रजेश्वर ने पूछा, 'सागर! तुम डाकुओं के साथ यहां क्यों आईं?'

सागर ने कहा, 'देवी रिश्ते में मेरी बहिन लगती हैं। मेरा उनसे पहिला परिचय था। तुम्हारे आने पर वह पहुंची थीं। मुझे रोती देख कर बोलीं, 'रोती क्यों हो, तुम्हारे श्याम-सलौने को मैं अभी पकड़वा मंगाती हूं। मेरे साथ चलो, मैं उनके साथ चली आई। मैं नौकरानी से कह आई हूं कि मैं तुम्हारे साथ जा रही हूं।'

ब्रजेश्वर बोले, 'परन्तु देवी रानी तो कुछ कहती नहीं।'

सागर ने देवी को पुकारा तो देवी नहीं, निशि आई। उसे देखकर

ब्रजेश्वर बोले, 'नाव तैयार हो तो मैं जाऊं।'

'नाव तुम्हारी ही है, परन्तु तुम रानी जी के बहनोई हो। यहां आने पर आपका स्वागत भी तो होगा। अपमान जो कर डाला हमने उसका हमें बड़ा दु:ख है। डाकू हैं तो क्या हिन्दू नहीं हैं?'

'क्या आज्ञा है?'

'पहिले ठीक से बैठिए।'

ब्रजेश्वर बोला, 'मैं बड़े आराम से बैठा हूं।'

निशि सागर से बोली, 'तुम्हीं उठाकर बैठाओ। हम तुम्हारी चीज को नहीं छू सकते, सोना-चांदी छोड़कर।'

'तो क्या मैं पीतल, कांसा हूं?'

'पुरुष स्त्री का बर्तन भांडा ही तो होते हैं। उनके बिना गृहस्थी चलती नहीं, इससे रखना पड़ता है। उसे मांजने, धोने, उठाने, रखने में जान निकल जाती हैं। सागर, अपना लोटा-थाली सम्भालो।'

'एक तो पीतल, कांसा, फिर लोटा, थाली। घड़ा, कलसा कहलाने योग्य भी नहीं?'

'मैं तो वैष्णवी हूं। घर-गृहस्थी की बातें सागर से जानी है।'

सागर बोली, 'पुरुष वास्तव में कलसा होते हैं, हृदय के खाली, हर गुणवती उन्हें पूरी तरह रखती है।'

'तूने ठीक कहा सागर। तभी तो स्त्रियां इन्हे अपने गले में बांध-कर संसार-सागर मे डूब मरती हैं। तू सम्भाल अपना कलसा और रख ठिकाने।'

'कलसा स्वय ठिकाने हो जाता है।' यह कहकर ब्रजेश्वर मसनद पर बैठ गया। तभी दो और सुन्दर वेशभूषा धारण किए युवती दासियां आकर सोने का चवर झलने लगी। निशि सागर से बोली, 'अपने पति के लिए तम्बाकू भर ला।'

सागर फुर्ती से सुगन्धित तम्बाखू भर लाई। ब्रजेश्वर बोले, 'मुझे दूसरे हुक्के पर तम्बाकू दो।'

'यह जूठा नहीं है। इस पर कभी किसी ने तम्बाकू नहीं पिया है। हम तम्बाकू नहीं पीतीं।'

'तब यह कहां से आया ?'

'देवी की रानीगिरी की दुकानदारी है यह सब।'

'पर मैं जब यहा आया था तब कोई तम्बाकू पी रहा था ?'

'कोई नहीं।'

ब्रजेश्वर ने गुड़गुड़ी के मुंह-नाल देखे, नई थी वह। वह धूम्रपान करने लगे। निशि सागर से बोली, 'तू यहां क्या कर रही है ? जा पान लगाकर ला। अपने हाथों से लगाना। हो सके तो टोना कर देना।'

सागर बोली, 'पान तो मैंने लगाया है, परन्तु जादू-टोना नहीं जानती। जानती तो मेरी यह दशा क्यों होती ?'

निशि, 'पति के लिए कुछ जलपान ले आ।'

ब्रजेश्वर बोला, 'अरे बाप ! रे बाप, इतनी रात गए जलपान। क्षमा करो मुझे।'

परन्तु उसकी किसी ने नही सुनी। सागर ने बराबर के कमरे में आसन बिछाकर थालियो में सामग्री सजा दी। सोने के पात्र में शीतल सुगन्धित जल रखा। निशि बोली, 'उठो।'

ब्रजेश्वर हाथ जोडकर बोला, 'डकैती करके मुझे बन्दी बना लिया। वह अत्याचार मैंने सहा, परन्तु इतनी रात को यह अत्याचार न सह सकूंगा।'

अन्त में ब्रजेश्वर को कुछ खाना ही पड़ा। सागर निशि से बोली 'ब्राह्मण को भोजन कराकर दक्षिणा देनी पड़ती है।'

निशि बोली, 'दक्षिणा रानी जी स्वय देंगी।' वह ब्रजेश्वर को अन्य कमरे मे ले चली।

भोजन के पश्चात निशि ब्रजेश्वर को देवी के शयनागार में ले गई। शयनागार दरबार की तरह सजा था। एक स्वर्ण मण्डित पलंग था, जिसमें मोती की झालरें लगी थी, किन्तु ब्रजेश्वर का ध्यान उधर नहीं था। वह तो उस अतुल सम्पत्ति की स्वामिनी से मिलने आया था। एक ओर काठ की चौकी पर घूंघट निकाले एक स्त्री बैठी थी। निशि और सागर मे ब्रजेश्वर ने जो चचलता देखी थी वह उसमें नहीं थी। वह धीर और स्थिर थी। उसका मुख लज्जा से झुका था। वह एक मोटी

धोती और हाथ में एक साधारण गहना पहिने थी।

निशि चली गई। देवी ने उठकर ब्रजेश्वर को प्रणाम किया। ब्रजेश्वर और भी चकित हुआ। अन्य किसी ने उसे प्रणाम भी नही किया था। ब्रजेश्वर ने देखा, वह वास्तव मे देवी-मूर्ति थी। वह मूर्ति उसने पहिले भी कभी देखी थी। उस मुख को देखकर ब्रजेश्वर को उसकी याद आई। क्या उस मुख और इस मुख मे कोई समानता थी? ब्रजेश्वर एक टक देखने लगे, परन्तु वह तो बहुत दिन हुए मर चुकी। कभी-कभी किसी का मुख देखकर मनुष्य को अन्य की स्मृति हो आती है।

ब्रजेश्वर का हृदय भर आया। उसकी आखों में आसू आ गए। देवी उन्हे देख न पाई। दोनों मेघो मे बिजली भरी थी।

देवी बोली, 'मैंने आज आपको कष्ट दिया। कारण आप जान जानते ही है। मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए।'

ब्रजेश्वर बोले, 'आपने मेरा उपकार ही किया है।' ब्रजेश्वर और कुछ न कह सका।

'आपने हमारे यहां जलपान करके हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाई। आप कुलीन है, आपकी मर्यादा रखना हमारा धर्म है। आप हमारे सम्बन्धी हैं। मैं जो दक्षिणा स्वरूप आपको दे रही हूं, कृपया ग्रहण कीजिए।'

'स्त्री से बढकर और क्या धन हो सकता है रानी जी? आपने मुझे वही दे दिया। इससे अधिक और क्या दीजिएगा?'

ओह ब्रजेश्वर! तूने यह क्या कहा! स्त्री से बढ़कर कौन धन है। तब बाप-बेटे ने मिलकर प्रफुल्ल को क्यो भगा दिया था?

देवी एक चादी की कलसी ब्रजेश्वर के पास रखकर बोली, 'आपको यह ग्रहण करनी होगी।'

'आपके बजड़े पर सोना-चादी बिखरा पड़ा है। अगर मैं यह न लूं, तो सागर क्रुद्ध होगी, परन्तु एक बात है...।'

बात समझकर देवी बोली, 'मैं शपथ से कहती हू कि यह चोरी या डकैती का धन नहीं है। मेरी अपनी भी सम्पत्ति है। अतएव सकोच न करें।'

ब्रजेश्वर उद्यत हो गया।

ब्रजेश्वर ने कलसी में हाथ डालकर देखा तो उसमें मोहरें थीं, पूछा, यह जो इस कलसी में भरा है, इसे कहां उलट दूं ?'

'यह सब आपको दे रही हूं ?'

'ये सब ?'

'हां सब।'

'इसमें कितनी मोहरें हैं ?

'तैंतीस सौ।'

'तैंतीस सौ मोहरें ! अर्थात् पचास हजार रुपए से भी अधिक ! शायद सागर ने आपसे रुपए की बात की है।'

'मैंने सागर से सुना था कि आपको पचास हजार रुपए की आवश्यकता है।'

'इसीलिए आप ये दे रही हैं।'

'यह रुपया मेरा नहीं है। न ही मुझे इसे दान करने का कोई अधिकार है। यह सब रुपया देवता का है, अधिकार मेरा है। उसी में से मैं आपको ऋण दे रही हूं।'

'मुझे इन रुपयों की इस समय बहुत आवश्यकता है। इनके लिए मुझे चोरी डकैती भी करनी पड़ती तो मैं करता। मेरे पिता संकट में हैं। यह रुपया मुझे कब चुकाना होगा ?'

'देवता की सम्पत्ति देवता को मिल जाए बस। मेरी मृत्यु का समाचार पाकर इनमें एक मोहर सूद की मिलाकर देव-सेवा में खर्च कर देना आप।'

'यह तो आपको धोखा देना हुआ। मुझे यह स्वीकार नहीं है।'

'तब आपकी जैसी इच्छा हो वैसे चुका दीजिए।'

'धन एकत्रित होने पर आपके पास भेज दूंगा।'

'आपका कोई आदमी मेरे पास नहीं आ सकेगा।'

'मैं स्वयं रुपया लेकर आऊंगा।'

'कहां आओगे ? मैं एक स्थान पर तो नहीं रहती।'

'आप जहां कहें।'

'दिन निश्चित करें तो मैं स्थान बता सकती हूं।'

'मैं माघ या फागुन मे रुपया एकत्रित कर पाऊंगा। बैशाख में रुपया लौटा दूंगा।'

'तब बैशाख के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को रात्रि में रुपया लेकर यहीं आना। सप्तमी के चन्द्रास्त तक मैं यही रहूंगी। चन्द्रास्त के पश्चात् भेंट न होगी।'

ब्रजेश्वर ने स्वीकार कर लिया। देवी ने दासी को कलसी नाव पर रख आने की आज्ञा दी। ब्रजेश्वर भी आशीर्वाद देकर नाव पर जाने को उद्यत हुए तो देवी रोक कर बोली, 'यह तो ऋण हुआ, दक्षिणा कहां दी है अभी ?'

'कलसी दक्षिणा में है।'

'वह आपके योग्य नही।'

यह कहकर देवी ने अपनी अंगूठी उतारी। ब्रजेश्वर ने प्रसन्नतापूर्वक उसे लेने के लिए हाथ बढाया। देवी ब्रजेश्वर का हाथ पकडकर अगूठी पहिनाने लगी।

ब्रजेश्वर का हृदय जाने कैसा होने लगा। उनका बदन कंटकित हो गया। हृदय में जैसे अमृत की धारा बहने लगी। वह हाथ खीचना भूल गए। तभी दो बूंद गरम जल ब्रजेश्वर के हाथ पर गिरा। ब्रजेश्वर ने देखा, देवी का चेहरा आंसुओं से भीगा था। ब्रजेश्वर को वह मुख याद आ गया। उस रात्रि को वह मुख भी उसी प्रकार आंसुओं से भीगा था। उन आसुओ को पोछना भी याद आया। ब्रजेश्वर ने अनायास ही देवी का मुख ऊपर उठाया, वह बिलकुल प्रफुल्ल के मुख जैसा था।

ब्रजेश्वर के सिर पर आकाश टूट पड़ा। उसने यह क्या किया ? यह क्या प्रफुल्ल थी ? वह तो दस वर्ष हुए मर चुकी। वह भागकर नाव पर जा चढ़ा ? सागर को भी साथ न ले जा सका। सागर बोली, 'पकड़ो, पकड़ो, असामी भाग रही है।' कहती हुई वह जाकर नाव पर चढ़ गई।

नाव ब्रजेश्वर और सागर को उनके बजड़े पर पहुंचा आई।

उधर निशि ने देखा, देवी शयनागार में पड़ी रो रही थी। उन्हें उठाकर बैठाया और आसू पोंछकर बोली, 'यही आपका निष्काम धर्म

है ? यही सन्यास है ? आपका भगवद्-वाक्य कहां गया ?'

देवी चुप रही। निशि बोली, 'यह व्रत तुम जैसी स्त्रियों के लिए नहीं है। इसके लिए मेरी जैसी स्त्री होनी चाहिए। मुझे रुलाने को कोई ब्रजेश्वर नहीं है। मेरा ब्रजेश्वर और वैकुण्ठेश्वर एक है।'

देवी आंखें पोंछकर बोली, 'तुम यमराज के यहां जाओ।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मुझ पर यमराज का कोई अधिकार नहीं है। तुम संन्यास छोड़कर घर लौट जाओ।'

'वह मार्ग खुला होता तो इधर न आती। बजड़ा खोलने को कहो। पालें उठवा दो।'

: १२ :

ब्रजेश्वर अपने बजड़े पर आकर भी गम्भीर रहा। सागर से बोला तक नहीं। उसने देखा कि देवी का बजड़ा हवा की तरह उड़ गया था। तब उसने सागर से पूछा, 'बजड़ा कहां गया ?'

'देवी यह बात किसी को नहीं बतलाती।'

'यह देवी कौन हैं ?'

'देवी, देवी हैं।'

'यह तुम्हारी कौन होती हैं ?'

'बहिन।'

'कैसी बहिन ?'

'नाते की।'

ब्रजेश्वर चुप हो गए। उन्होंने मल्लाहों से पूछा, 'तुम लोग उस बजड़े के साथ अपना बजड़ा ले जा सकते हो ?'

मल्लाह बोले, 'असम्भव। वह टूटे तारे की तरह जा रहा है।'

ब्रजेश्वर फिर चुप हो गया। सागर सो गई।

सवेरा होने पर सागर का वजड़ा चल पड़ा। सागर ब्रजेश्वर के पास आकर बैठ गई। ब्रजेश्वर ने पूछा, 'क्या देवी डकैती करती हैं?'

'तुम क्या समझते हो?'

'डकैती का सब सामान उनके पास है। वह चाहे तो कर सकती हैं, परन्तु विश्वास नहीं होता।'

'विश्वास क्यों नहीं होता?'

'परन्तु बिना डकैती के इतना धन कहां से प्राप्त किया?'

'कोई कहता है देवता ने दिया है। कोई कहता है देवी को गड़ा हुआ धन मिला है। कोई कहता है देवी सोना बनाना जानती हैं।'

'देवी क्या कहती हैं?'

'देवी कहती है कि उनका कुछ नहीं है, सब पराया है।'

'यह धन पाया कहा से?'

'मैं क्या जानू?'

'पराए धन पर इतनी अमीरी है? मालिक कुछ कहेगा नहीं?'

'देवी अमीरी नहीं करती। जमीन पर सोती हैं। गाढ़ा पहिनती हैं। कल जो था, वह दुकानदारी थी। यह तुम्हारे हाथ मे क्या है?'

सागर ने ब्रजेश्वर की अंगुली मे अगूठी देखी।

ब्रजेश्वर बोला, 'देवी की नाव पर जलपान किया था न। उन्होंने मुझे यह अगूठी दक्षिणा मे दी है।'

'देखू।'

ब्रजेश्वर ने अगूठी सागर को दी। सागर ने उसे उलट-पलटकर देखा। वह बोली, 'इसमे देवी चौधरानी नाम लिखा है?'

'कहा?'

'अन्दर।'

ब्रजेश्वर उसे पढ़कर बोला, 'अरे! यह क्या? यह तो मेरा नाम है। यह तो मेरी अंगूठी है। सागर तुम्हे मेरी कसम, सच-सच बताओ देवी कौन हैं?'

'तुम न पहिचान सके तो मेरा क्या दोष? मैंने तो एक क्षण में पहिचान लिया था।'

प्रफुल्ल !'

'यह कौन है ? देवी ही तो हैं प्रफुल्ल !'

ब्रजेश्वर चुप रहा। सागर ने देखा, उसका वदन अपूर्व आनन्द से भर गया। उसका चेहरा चमक उठा, परन्तु आँखें सजल हो गईं। सागर की ओर देखते हुए उसने अपनी आँखें मूंद लीं और उसकी गोद में सिर रखकर लेट गया। सागर ने कातर होकर बहुत पूछा, परन्तु उत्तर न पाया। केवल एक बार कहा, 'प्रफुल्ल डाकू है क्या ?'

देवी का बजड़ा अपने स्थान पर पहुंच गया। देवी ने नदी में स्नान किया। उन्होंने देह और सिर पर नदी की मिट्टी पोतली और रूखे केश फैला दिए। भीगी साड़ी में देवी का अनुपम सौन्दर्य प्रकट हुआ। इस वेश में वह साक्षात् देवी लग रही थीं।

इसी अपूर्व वेश में एक स्त्री को साथ लेकर देवी ने जंगल में प्रवेश किया।

देवी जंगल में काफी दूर जाकर अपनी दासी से बोली, 'दिवा ! तू यहीं बैठ, मैं अभी आती हूं। यह कहकर देवी ने घने जंगल में प्रवेश किया। जंगल में एक सुरंग थी। नीचे एक कोठरी थी, जहां अंधेरा था। पहिले वहां मंदिर था। देवी अंधकार में सीढ़ियां उतरने लगीं।

मंदिर में एक दीपक टिमटिमा रहा था। उसके प्रकाश में एक शिवलिंग दिखाई दिया। एक ब्राह्मण शिवलिंग के सामने पूजा कर रहा था। देवी शिवलिंग को प्रणाम करके बैठ गईं। ब्राह्मण पूजा समाप्त कर देवी से बातें करने लगा।

'मां ! कल रात तुमने डकैती की थी ?'

'आप क्या जानते हैं ?'

'क्या जानूं ?'

ब्राह्मण भवानी पाठक थे। देवी बोली 'क्या जानूं, क्यों ठाकुर ? क्या आप मुझे नहीं पहिचानते ? मैं दस वर्ष डाकुओं के साथ रही हूं। लोग जानते हैं, जितनी डकैती होती है, मैं करती हूं, परन्तु मैंने कभी यह नहीं किया, यह आपको ज्ञात है। फिर भी आप कहते हैं, क्या जानूं !'

'क्रुद्ध क्यों होती हो ? हम लोग जिस लिए डकैती करते हैं उसे बुरा नहीं मानते। बुरा समझते तो करते ही नहीं। तुम भी इसे बुरा नहीं समझती। इन दस वर्षों में...।'

'इस विषय में मेरा मत बदल चुका है। मैं अब तक आपकी बातों में भूली थी, अब न भूलूंगी। दूसरे का धन लूटना यदि बुरा नहीं है तो क्या है ? मैं अब आपसे कोई सम्बन्ध न रक्खूंगी।'

'यह क्या ? इतने दिन जो समझाया, क्या वह फिर से समझाना होगा ? यदि मैं डकैती की एक कौड़ी भी अपने काम मे लूं तो यह पाप है। तुम जानती हो मैं दूसरों को देने के लिए डकैती करता हूं।

हम भले आदमियों को नही लूटते। हम जालिम आदमियों का धन लूटकर उन्हे देते है जिन पर अत्याचार होता है।

देश में अराजकता फैली है। दुष्टों का दमन करने वाला कोई नही है। इसलिए हम तुम्हें रानी बनाकर राज-शासन चलाते हैं। तुम्हारे नाम से दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करते हैं।'

'राजा-रानी आप जिसे बनाना चाहें बना सकते हैं। आप मुझे छुट्टी दीजिए। मेरा मन इसमे नहीं लगता।'

'इस राज्य को संभालने के लिए अन्य किसी के पास इतना अतुल ऐश्वर्य नही है। तुम्हारे दान से सब तुम्हारे वश में रहते हैं।'

'मैं यह सब धन आपको देती हूं। जैसे मैं खर्च करती हूं, वैसे ही आप करें। मैं अब काशी जाकर रहूंगी।'

'लोग केवल तुम्हारे धन से प्रभावित नही हैं। तुम रूप, गुण, हर चीज में राजरानी लगती हो। बहुतेरे तुम्हें साक्षात् भगवती मानते हैं। तुम सबकी मंगलकारिणी हो। दान करती हो। भगवती के समान रूपवती हो। तुम्हारे नाम पर हम शासन चला रहे हैं।'

'इसीलिए लोग मुझे डाकू समझते हैं। यह कलंक मरने पर भी नहीं मिटेगा।'

'कलक ! वरेन्द्रभूमि में क्या कोई इस नाम को कलंकित कर सकता है ? चलो उसे जाने दो। धर्म-कार्य में यश-अपयश नहीं देखा जाता। कलंक के भय से कर्म निष्काम कैसे हुआ ? कलंक की बात सोचकर

तुमने केवल अपना हानि-लाभ सोचा, दूसरों का नहीं ? आत्मविसर्जन कहां हुआ ?'

'मैं तर्क में आपसे नहीं जीत सकती। आप महामहोपाध्याय हैं। मेरी स्त्री-बुद्धि में जो आता है वही कहती हूं। मैं इस पद से मुक्त होना चाहती हूं। मुझे यह भला नहीं लगता।'

'भला नहीं लगता तो कल रंगराज को डकैती के लिए क्यों भेजा ? सही कहना। मुझसे कुछ छिपा नहीं है।'

'छिपा नहीं है तो यह भी ज्ञात होगा कि रंगराज ने डकैती नहीं की, केवल अभिनय किया था।'

'यह मैं नहीं जानता, इसीलिए पूछ रहा हूं।'

'यह काम एक आदमी को पकड़ने के लिए किया था।'

'किस आदमी को ?'

नाम देवी के मुंह से नहीं निकला, परन्तु भवानी से छल नहीं चल सकता था। देवी बोली, 'उनका नाम ब्रजेश्वर राय है।'

'मैं उसे खूब जानता हूं। उससे तुम्हें क्या काम था ?'

'कुछ देना था। उसके बाप को जागीरदार कैद करने वाला है। उसे कुछ देकर ब्राह्मण की जान बचाई।'

'यह उचित नहीं किया। हरिवल्लभराय बड़ा पाजी और पाखण्डी आदमी है। उसने अपनी निर्धन समधिन पर घोर अत्याचार किया था। ऐसे नीच व्यक्ति का जेल जाना ही उचित था।'

देवी सिहरकर बोली, 'वह कैसे ?'

'उसकी एक पुत्र-वधू की केवल विधवा मां थी। हरिवल्लभ ने उसे बाग्दी कहकर घर से निकाल दिया। इसी दुःख में बहू की मां मर गई।'

'और वह ?'

'सुना है वह बेचारी भी भूखों मर गई।'

'हमें इन बातों से क्या मतलब ? हमने परोपकार का व्रत लिया है। जिसे दुःखी देखेंगे उसी का दुःख मिटाएंगे।'

'खैर, कोई हानि नहीं, परन्तु इस समय बहुत से लोग दरिद्र हो गए

हैं। जागीरदार ने उनका सर्वस्व ले लिया है। उन्हें कुछ खाने को मिले तो वे अपनी शक्ति बढ़ाएं। शक्ति पाकर वे अपना अधिकार लाठी से प्राप्त कर लेंगे। तुम शीघ्र अपना दरबार लगाकर उनकी रक्षा करो।'

'सूचना भिजवा दीजिए आगामी सोमवार को दरबार लगेगा।'

'नहीं, तुम अब वहां न रह पाओगी। अंग्रेजों को पता चल गया है कि तुम यहां हो। वे पाच सौ सिपाहियों के साथ तुम्हे पकड़ने आ रहे हैं। यहां दरबार न होगा। दरबार बैकुण्ठपुर के जंगल में होगा। यही सूचना फैला दी गई है। सोमवार का दिन निश्चित किया है। वहां जाने का साहस सिपाही न करेंगे। करेंगे तो मारे जाएंगे। इच्छानुसार रुपया लेकर वहां को प्रस्थान करो।'

'इस बार जा रही हूं, परन्तु फिर मैं यह काम न कर सकूंगी। अब मेरा मन नहीं लग रहा।'

देवी जंगल से निकलकर बजड़े पर जा चढ़ीं। रंगराज को देवी ने आदेश दिया, 'सोमवार को बैकुण्ठपुर के जंगल में दरबार लगेगा। वहां के लिए प्रस्थान करो। बरकन्दाजों को भी सूचना भेज दो। साथ में रुपया ले चलना है।'

बजड़े के मस्तूल पर पालें हवा में फूल उठी। नाव बजड़े के सामने बांधी गई। साठ जवान 'रानीजी की जय' कहकर उसे खेने लगे। बजड़ा हवा की तरह उड़ चला। स्थल-मार्ग से साधारण वेश में बहुत से लोग बजड़े के साथ चल पड़े थे। उनके हाथों में एक-एक लाठी थी। बजड़े के अन्दर असंख्य ढाल, बर्छे और बन्दूकें थी।

सोमवार को जंगल में देवी का दरबार लगा।

देवी पूजा की प्रतिमा के समान सजी थी। यह सब देवी का ठाट था। दोनों ओर से चार युवा दासियां सोने के चवर डुला रही थीं। उनके आगे-पीछे बहुत से चोबदार भड़कीली पोशाक पहिने खड़े थे। बरकन्दाजों की शोभा सब से बढ़कर थी। पाच सौ बरकन्दाज देवी के दोनों ओर थे। लाल पगड़ी, लाल अंगरखा, घुटने तक की लाल धोती पहिने थे। उनके हाथों में ढ़ाल, बर्छे थे। चारो ओर लाल झंड़े लगे थे।

देवी सिंहासन पर बैठी थी। दस हजार व्यक्तियों ने 'देवी रानी की

जय' की। दस युवकों ने देवी की स्तुति गाई। रंगराज एक-एक दरिद्र को देवी के सिंहासन के पास लाने लगा। उन्होंने भक्ति-भाव से साष्टांग प्रणाम किया। देवी ने मीठे शब्दों से सबका परिचय जाना और दान दिया। प्रातःकाल से दान करते-करते रात्रि का एक प्रहर बीत गया। यही देवी की डकैती थी।

गुडलैण्ड साहब को सूचना मिली कि बैकुण्ठपुर के जंगल में देवी का दल आया है। असंख्य डाकू हैं। डाकू बहुत-सा धन लेकर अपने घरों को लौटे हैं। इस बार उन्होंने बड़ी भारी डकैती की है।

उधर ब्रजेश्वर ठीक समय पर घर पहुंचे। हरिवल्लभ ने पूछा, 'रुपए का क्या हुआ?'

'ससुर ने रुपया नहीं दिया।'

वह घबराकर बोले, 'तो क्या रुपया नहीं मिला?'

'ससुर ने नहीं दिया। मैं दूसरी जगह से लाया हूं।'

'लाए हो? तो मुझ से कहा क्यों नहीं? दुर्गा! प्राण बचे।'

'जहां से रुपया पाया है, वह लेना चाहिए या नहीं, यह मैं नहीं समझ पाया।'

'किसने दिया है?'

'नाम याद नहीं आ रहा है, वह जो डाकू स्त्री है न!'

'देवी चौधरानी?'

'हां वही।'

'उससे रुपया कैसे मिला?'

'संयोग से मिल गया।'

'डाकू का रुपया है। क्या लिख-पढ़ आए हो कुछ?'

'लिखना-पढ़ना कुछ नहीं पड़ा। फिर भी 'पाप का धन ग्रहण करने वाला भी पापी होता है। इसलिए मैं यह रुपया रखना नहीं चाहता।'

'रुपया न लूं तो क्या जेल में जाऊं? ऋण लेने में पाप पुण्य क्या? यह सोचने की बात नहीं। सोचना यह है कि डाकू का रुपया लिखकर तो नहीं लिया। कहीं देरी होने पर वह घर बार न लूट ले।'

व्रजेश्वर कुछ न बोला ।

हरिवल्लभ ने पूछा, 'लौटाने की मियाद कितनी है ?'

'वैशाख शुक्ल सप्तमी के चन्द्रास्त तक ।'

'रुपया भेजा कहां जाएगा ?'

'उस दिन वह सन्धानपुर के घाट पर रहेंगी । वहीं रुपया पहुंचाना होगा ।'

'ठीक है । रुपया भेज दिया जाएगा ।'

व्रजेश्वर चला गया । हरिवल्लभ ने मन में सोचा, हूं ! 'मैं उसका रुपया चुकाने जाऊंगा ? सिपाही बुलाकर पकड़वा दूंगा । सब टण्टा कट जाएगा । उन दिन यदि पलटन सहित कप्तान साहब उसके बजड़े पर न पहुंचे तो मेरा नाम हरिवल्लभ नहीं ।'

यह बात हरिवल्लभ ने व्रजेश्वर से नहीं कही ।

सागर ने ब्रह्म ठकुरानी से कहा कि व्रजेश्वर एक राजरानी से विवाह कर आये हैं । उसने मना किया, पर माने नहीं । वह शूद्र है । उसके दो विवाह और हैं । इसलिए व्रजेश्वर की जात गई । अब सागर व्रजेश्वर की जूठन न खाएगी । ब्रह्म ठकुरानी ने व्रजेश्वर से पूछा । व्रजेश्वर स्वीकार करके बोला, 'रानी की जाति उच्च है । वह सागर की बहिन है । अब रही विवाह की बात सो तीन उनके हैं और तीन मेरे हैं ।'

ब्रह्म ठकुरानी ने यह बात झूठी जानी । सागर चाहती थी कि ठकुरानी यह बात नयनतारा से कहे । वह पति के नया विवाह करने की बात सुनकर चिढ़ गई । इसलिए कुछ दिन व्रजेश्वर नयनतारा के पास न गया ।

नयनतारा ने तूफान मचा दिया । उसने गृहिणी से कहा । गृहिणी बोली, 'तुम तो पागल हो गई हो । ब्राह्मण-पुत्र शूद्र से विवाह नहीं कर सकता । तुम चिढ़ती हो इस से वे तुम्हें चिढ़ाते हैं ।'

नयन बहू तब भी न समझी । वह बोली, 'यदि किया हो !' गृहिणी बोली, 'यदि किया हो तो मैं बहू को घर में रक्खूंगी । लड़के की बहू को छोड़ नहीं सकती ।'

तभी व्रजेश्वर आ गया तो नयन बहू उठकर भाग गई । व्रजेवर ने

पूछा, 'क्या कहती थीं ?'

'कहती थी कि तू नया विवाह करे, तो बहू को घर ले आऊं।'

ब्रजेश्वर बिना कुछ कहे ही चला गया।

गृहिणी ने गृह-स्वामी से यह बात उठाई। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारा क्या मन है ?'

'सोचती हूं, सागर बहू यहां रहती नहीं। नयन बहू लड़के के योग्य नहीं है। यदि ब्रज एक ब्याह और करके घर बसाये तो सुख मिले।'

'लड़के का मन जान लो। वह चाहे तो कहना मैं अच्छा सम्बन्ध करा दूंगा।'

'मैं उसका मन टटोल लूं।'

मन टटोलने का भार ब्रह्म ठकुरानी को सौंपा गया। उन्होंने ब्रजेश्वर को बहुत से विरही राजकुमारों की कहानियां सुनाईं, परन्तु फल न निकला। तब ब्रह्म ठकुरानी ने स्पष्ट पूछा, परन्तु ब्रजेश्वर का मन न खुला। ब्रजेश्वर बोले, 'मां-बाप की जो आज्ञा होगी, मैं वही करूंगा।'

: १३ :

वैशाख शुक्ल सप्तमी निकट थी और देवी का ऋण चुकाने का कोई उद्योग न था। हरिवल्लभ इस समय सम्पन्न थे, चाहते तो रुपए एकत्रित कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ध्यान ही न दिया। समय सिर पर आ गया। दो चार दिन रह गए। अब ब्रजेश्वर ने तकाज़ा किया तो बोले, 'घबड़ाओ नहीं, मैं रुपयों का प्रबन्ध करने जा रहा हूं। षष्ठी को लौटूंगा।' वह पालकी पर चढ़कर घर से निकल पड़े।

हरिवल्लभ ने सीधे रंगपुर जाकर कलक्टर साहब से भेंट की। वह बोले, 'मेरे साथ सिपाही भेजिए। मैं देवी चौधरानी को पकड़वाता हूं। पकड़वा देने पर मुझे क्या इनाम मिलेगा ?'

साहब बहुत प्रसन्न हुए। वह जानते थे कि देवी चौधरानी सब डाकुओं की सरदार है। उन्होंने देवी को पकड़ने का काफी प्रयत्न किया था, परन्तु सफलता न मिली थी। साहब हरिवल्लभ को पुरस्कार देने को उद्यत हो गये। हरिवल्लभ बोले, 'मेरे साथ पांच सौ सिपाही भेजिए।'

साहब ने हुक्म दिया और हरिवल्लभ के साथ लेफ्टिनेण्ट ब्रेनन पांच सौ सिपाही लेकर चल पड़े।

ब्रजेश्वर से हरवल्लभ ने उस घाट का नाम सुन लिया था जहां देवी आने वाली थी। शायद देवी बजड़े पर रहे, इसलिए ब्रेनन फौज लेकर नाव से चले। पांच नावें बजड़ा घेरने को चलीं। साहब ने बहुत सी सेना स्थल-मार्ग से भी भेज दी।

जिस घाट पर ब्रजेश्वर को पकड़ा गया था, उसी पर देवी उपस्थित थीं। सन्ध्या बीत चुकी थी। बजड़ा था, परन्तु नाव और उसके पचास जवान नहीं थे। बजड़े पर कोई पुरुष नहीं था। देवी गाढ़े की धोती पहिने साधारण वेश में थीं।

देवी छत पर अकेली नहीं थी। उनके पास दो स्त्रियां बैठी थीं, एक निशा, दूसरी दिवा।

दिवा बोली, 'क्या परमेश्वर भी कभी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है?'

प्रफुल्ल बोली, 'प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। मैं प्रत्यक्ष देखने की बात नहीं कह रही थी। मैं प्रत्यक्ष करने की बात कह रही थी। प्रत्यक्ष छः प्रकार का होता है। तुम मेरी बात सुनती हो यह तुम्हारा श्रवण-प्रत्यक्ष है। तुम मेरे फूलों की गंध सूंघ रही होना।'

'सूंघ रही हूं।'

'यह नासिका-प्रत्यक्ष है। यदि मैं तुम्हें हाथ से छू दूं तो वह त्वचा-प्रत्यक्ष होगा। यदि निशि तेरा माथा खाए तो वह रसना-प्रत्यक्ष होगा।

'यह ठीक है, परन्तु प्रभु को न देखा है न सुना है, न सूंघा है, न छुआ है और न खाया ही जा सकता है। उसे किस तरह प्रत्यक्ष किया जाएगा?'

'आंख, कान, नाक, रसना और त्वचा को छोड़कर एक ज्ञानेन्द्रि होती है। उसी से परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है।

देखो आज अंग्रेजों के सिपाही मुझे पकड़ने को आ रहे हैं । तुम जानती हो न ?'

दिवा बोली, 'हां जानती हूं ।'

'सिपाही को तुमने प्रत्यक्ष किया है ?'

'नहीं, उनके आने पर प्रत्यक्ष करूंगी ।'

'मैं कहती हूं वे आ गए हैं । पर बिना आंखों से देखे तुम प्रत्यक्ष नहीं कर पा रही हो । लो, इनकी सहायता लो ।' देवी ने दिवा को दूरबीन दी । दिवा ने उससे देखा । देवी बोली, 'क्या देखा ?'

'एक नाव है । उसमें बहुत से आदमी हैं ।'

'वे सिपाही हैं ।' फिर देवी ने दिवा को पांच नावें दिखाईं ।

निशि ने पूछा, 'नाव किनारे पर दिख रही हैं । यहां न आकर वहां क्यों लगा लीं हैं इन लोगों ने ?'

'शायद स्थल से आने वाले सिपाही अभी नहीं आए है । ये उनकी प्रतीक्षा मे हैं ।'

'अब हम चाहें तो भाग सकते हैं ।'

'उन्हें मालूम नहीं है कि हमारे पास दूरबीन है ।'

'बहिन ! प्राण रहेंगे तो कभी-न-कभी पति से भेंट अवश्य होगी । आज प्राण बचाओ ।'

'प्राणों का भय होता तो मैं सब कुछ जानकर भी यहां क्यों आती और अन्य सब लोगों को विदा क्यों कर देती ? अपने हजारों बरकन्दाजों को क्यों भेज देती ?'

'हम पहिले जानतीं तो तुम्हें यह कभी न करने देतीं ।' दिवा बोली ।

'मैंने जो सोचा है वह मैं अवश्य करूंगी । मैं आज पति का दर्शन करूंगी । उनकी आज्ञा प्राप्त कर दूसरे जन्म में उनसे मिलने के लिए प्राण-त्याग करूंगी । तुम दोनों जब मेरे पति लौटने लगें तो उनके साथ चली जाना । मैं अकेली पकड़ी जाकर फांसी चढ़ूंगी । इसी लिए मैंने सबको हटा दिया है ।'

'इस बदन में प्राण रहते मैं तुम्हें न छोड़ूंगी । मरना ही होगा तो तुम्हारे साथ मरूंगी ।' निशि बोली ।

तभी देवी ने निशि के हाथ से दूरबीन लेकर एक डोंगी देखी। वह बोली, 'वह आ रहे हैं। तुम लोग नीचे जाओ।'

दिवा और निशि कमरे में चली गईं। डोंगी बजड़े से लगी। उसमें से ब्रजेश्वर कूदकर बजड़े पर चढ आया और देवी की ओर बढ़ा। देवी ने उसके चरणों की धूलि मस्तक से लगाई। ब्रजेश्वर बोला, 'आज रुपया नहीं ला सका। शायद दो-चार दिन मे दे सकूं। तुमसे कहा था, भेंट होगी, इसी लिए इस समय आया हूं। पिता जी रुपये का प्रबन्ध करने गए हैं। वह अभी लौटे नही हैं।'

देवी ब्रजेश्वर की भोली-भाली बात सुनकर थोडा मुस्कराती हुई बोली, 'अब मुझसे भेंट नहीं होगी।' कहते हुए देवी का गला भर आया। उन्होने अपनी आंखें पोंछी। भेंट नहीं होगी परन्तु ऋण चुकाने का और उपाय है। जब सुविधा हो तब वह रुपया गरीब-दुखियों को बांट देना, मुझे मिल जाएगा।'

ब्रजेश्वर देवी का हाथ पकड़कर बोले, 'प्रफुल्ल ! तुम्हारा रुपया···।' जैसे ही ब्रजेश्वर ने 'प्रफुल्ल' का हाथ पकड़ा, प्रफुल्ल का बंधा बाध टूट पड़ा। उसकी आंखों से आसू की धारा बह चली। रुपये की बात उस धारा मे बह गई। तेजस्विनी देवी बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो पडी। ब्रजेश्वर की विचित्र दशा हुई। उसने सोचा। वह डकैती करती है, उसे आसू बहाने की क्या आवश्यक्ता ? ब्रजेश्वर की भी आंखें भर आईं। ब्रजेश्वर के आंसू गालों पर से बहते हुए प्रफुल्ल के हाथ पर गिरने लगे। बालू का बांध टूट गया। ब्रजेश्वर ने सोचा था डकैती करने के लिए प्रफुल्ल का तिरस्कार करेगा। पापिन कहेगा और जन्म भर के लिए त्यागकर चला आयेगा, परन्तु आसुओं से हाथ भिगाकर वह कुछ भी न कह सका।

आंसू पोंछकर ब्रजेश्वर बोला, 'प्रफुल्ल ! तुम्हारा रुपया मेरा रुपया है। उसे चुकाने के लिए मैं कातर नही हूं, परन्तु आज मैं बहुत कातर हूं। गत दस वर्षों में मैं तुम्हारे ध्यान में डूबा रहा। मेरी और दो स्त्रिया हैं, परन्तु गत दस वर्षों में मैंने उन्हें स्त्री नही समझा। यह क्यों हुआ, यह मैं तुम्हें नही समझा सकता। मैंने सुना था कि तुम संसार में नहीं रहीं,

परन्तु मेरे लिए तुम थीं। मेरे मन में और किसी का ध्यान नहीं था। तुम्हारे मरने का समाचार पाकर मैं मरना चाहता था। आज सोचता हूं, मर गया होता तो अच्छा होता। तुम मर गई होतीं, तो भी अच्छा होता। अब जो सुन-समझ रहा हूं, वह तो न सुनना-समझना पड़ता। आज दस वर्ष की खोई सम्पत्ति प्राप्त कर मुझे स्वर्ग से भी अधिक सुख प्राप्त होता, परन्तु वह हुआ नहीं तुम्हें इस रूप में पाकर। मुझे मर्मान्तिक पीड़ा है।' उसके आंसू बह चले। वह दोनों हाथों में माथा पकड़कर बोला, 'मैंने अपने मन के मन्दिर में जो प्रतिमा बैठा रखी थी प्रफुल्ल ! वह यह पेशा करती है ?'

प्रफुल्ल बोली, 'डकैती करती हूं ?'

'नहीं करतीं क्या ?'

प्रफुल्ल कह सकती थी कि जब ब्रजेश्वर के पिता ने उसे घर से निकाला था तो प्रफुल्ल ने उनसे पुछवाया था, 'मैं कंगाल हूं। तुम निकाल दोगे तो मैं खाऊंगी क्या ?' ससुर ने उत्तर दिया था, 'चोरी, डकैती या भीख मांगकर खाना।' ब्रजेश्वर प्रफुल्ल की भर्त्सना करने चला था। प्रफुल्ल कह सकती थी, 'डाकू की भर्त्सना कर रहे हो ? तुम्हीं लोगों ने तो चोरी, डकैती करके खाने की आज्ञा दी थी। मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन कर रही हूं।' परन्तु यह उत्तर प्रफुल्ल ने नहीं दिया। वह हाथ जोड़कर बोली, 'मैं डाकू नहीं हूं। मैं शपथ लेकर कहती हूं कि मैंने कभी डकैती नहीं की और न कभी डाके की एक कौड़ी छुई है। तुम मेरे देवता हो। मैं अन्य देवता की अर्चना करना सीख रही थी, परन्तु सीख न पाई। लोग मुझे डाकू कहते हैं। क्यों कहते हैं, वह तुम्हें सुनाती हूं। वही सुनाने आज यहां आई हूं। फिर कभी तुम सुन न सकोगे।'

प्रफुल्ल ने ससुराल से निकाले जाने के दिन से आज तक की सारी कहानी ब्रजेश्वर को सुनाई। ब्रजेश्वर सुनकर विस्मित, लज्जित और आनन्दविभोर हो उठे। प्रफुल्ल ने पूछा, 'मेरी इन बातों पर आपको विश्वास है ?'

अविश्वास का कोई कारण नहीं था। ब्रजेश्वर उत्तर नहीं दे सका, परन्तु उसके चेहरे की कान्ति देखकर वह समझ गई कि विश्वास हो

गया। प्रफुल्ल बोली, 'अब अपनी चरण-धूलि देकर मुझे विदा दो। देर न करो।

विपत्ति आने वाली है। तुम्हें पाकर जाने को कह रही हूं, इसी से समझ लो कि विपत्ति असाधारण है। मेरी दो सखियां इस नाव पर है। उन्हें अपने साथ लेते जाओ। वे जहां जाना चाहें, पहुंचा देना। मुझे जैसे आज तक याद रक्खा है, वैसे ही भविष्य में याद रखना। सागर मुझे भूलने न पाएगी।'

व्रजेश्वर कुछ चुपचाप सोचकर बोला, 'मैं कुछ नही समझ पा रहा हू प्रफुल्ल! तुम्हारे इतने आदमी थे, वे सब कहां हैं? बजड़े पर दो स्त्रियां हैं, उन्हें भी जाने को कहती हो फिर भेंट नहीं होगी, यह सब क्या है? क्या आपत्ति है, मुझे न बताओगी तो मैं नही जाऊंगा।'

'तुम्हारे सुनने की बात नहीं है।'

'मैं क्या तुम्हारा कुछ भी नहीं हूं?'

उसी समय बन्दूक का शब्द हुआ।

: १४ :

सामने से पांच नाव आ रही थीं। डांडों की चोट से उछलता पानी चांदनी रात में चमक रहा था। उनमें सिपाही भरे थे। बन्दूक का शब्द सुनकर पाचों नाव बढ़ने लगी। यह देखकर प्रफुल्ल बोली, 'अब विलम्ब न करो। जल्दी से डोंगी पर चढ़कर चले जाओ।'

'क्यों? ये नाव किसकी हैं?'

'इनमें कम्पनी के सिपाही हैं। ये बन्दूकें भी उन्ही के सिपाहियो ने छोड़ी थीं।'

'वे इधर क्यों आ रहे हैं? तुम्हें पकड़ने के लिए?'

प्रफुल्ल चुप रही। व्रजेश्वर बोला, 'ज्ञात होता है तुम पहिले से यह

सब कुछ जानती थीं।'

'हां! मेरे गुप्तचर सब स्थानों पर हैं।'

'तुमने यह यहां आकर जाना, या पहिले से ही जानती थी?'

'पहिले से ही जानती थी।'

'तब जान-बूझकर यहां क्यों आईं?'

'एक बार तुम्हारे दर्शन करने के लिए।'

'तुम्हारे आदमी कहां हैं?'

'उन सबको मैंने विदा कर दिया है। मेरे लिए वे क्यों मरें?'

'क्या तुमने आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया है?'

'जीकर भी क्या होगा? तुम्हें देख लिया, मन की बात तुमसे कह दी। तुम मुझे प्यार करते हो, यह जान लिया। मेरे पास जो कुछ था, वह गरीबों को बांट चुकी। अब क्या शेष है?'

'मेरे साथ घर नहीं चलोगी?'

'अब कहते हो?'

'तुमने मुझसे शपथ खाई है, मैं भी शपथ खाता हूं। आज तुम किसी तरह अपने प्राण बचा लो, मैं तुम्हें अपनी गृहिणी बनाऊंगा। अब मैं किसी की बात न सुनूंगा।'

'ससुर जी क्या कहेंगे?'

'उन्हें मैं समझ लूंगा।'

'अब कोई उपाय नहीं है। तुम अपना डोंगी बुलाओ। निशि और दिवा को लेकर यहां से शीघ्र चले जाओ।'

ब्रजेश्वर ने डोंगी बुलाई। डोंगी वाले से कहा, 'तुम लोग भाग जाओ। मैं नहीं जाऊंगा।'

डोंगी वाले जल्दी से डोंगी खोलकर चलते बने।

प्रफुल्ल बोली, 'तुम नहीं गए।'

'तुम मरना जानती हो तो क्या मैं नहीं जानता? तुम मेरी स्त्री हो। मैं सौ बार तुम्हारा त्याग कर सकता हूं, परन्तु मैं तुम्हारा पति हूं, विपत्ति में तुम्हारी रक्षा का भार मुझ पर है। इस समय मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता तो क्या तुम्हें छोड़कर भाग जाऊं?'

देवी गम्भीर वाणी में बोली, 'अच्छा, यदि जान बचने का कोई उपाय होगा तो मैं करूंगी।' कहकर प्रफुल्ल ने आकाश की ओर देखा, परन्तु तुरन्त ही निराश होकर बोली, 'परन्तु मेरे बचने से एक दूसरा अमंगल होगा।'

'वह क्या ?'

'मैंने सोचा था वह बात तुम्हें न बताऊं, परन्तु अब बिना बताए चारा नहीं है। इन सिपाहियों के साथ मेरे ससुर हैं। मैं न पकड़ी गई तो उन पर विपत्ति आ सकती है।'

ब्रजेश्वर सिहर उठा यह सुनकर। वह माथा ठोंककर बोला, 'क्या वही मुखबिर हैं ?'

प्रफुल्ल चुप रही। ब्रजेश्वर सब कुछ समझ गया। इस स्थान पर देवी चौधरानी के मिलने की बात हरिवल्लभ ने ब्रजेश्वर से सुनी थी। देवी की गूढ़ मंत्रणा और कोई नहीं जान सकता था। हरिवल्लभ ने इसीलिए रुपया चुकाने का कोई यत्न नहीं किया था, यह समझने में ब्रजेश्वर को अधिक समय नहीं लगा। उनका हृदय अपने पिता के प्रति घृणा से भर गया।

फिर भी वह बोले, 'मैं मरूं तो कोई हानि नहीं। तुम्हारा मरना उससे अधिक दुःखकर होगा, परन्तु मैं उसे देखने नहीं आऊंगा। फिर भी पिताजी की रक्षा अवश्य करनी है।'

'उसकी चिन्ता न करो। मेरी रक्षा नहीं होगी, अतः उन्हें कोई भय नहीं है। उनकी रक्षा से तुम्हारी रक्षा हो जाएगी। मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि उनके अमंगल की शंका रहते अपनी रक्षा के लिए प्रयत्न न करूंगी। तुमने कहा तब भी वही बात है, न कहते तब भी यही होता।'

उसी समय जंगल में शंख-नाद हुआ। उसे सुनकर प्रफुल्ल चौंक पड़ी।

देवी ने पुकारा, 'निशि !'

निशि दौड़कर छत पर आई।

'यह शंख-नाद किसने किया ?'

'दाढ़ी वाले बाबा का लगता है।'

'रंगराज का ?'

'हां ऐसा ही प्रतीत हो रहा है।'

'परन्तु मैंने तो उन्हें सवेरे देवीगढ़ भेजा था।'

'शायद मार्ग से लौट आए हैं ?'

'उन्हें बुलाओ।'

ब्रजेश्वर बोला, 'नाद दूर से आया था। यहां से आवाज वहां तक नहीं पहुंचेगी। मैं उतरकर खोज लाता हूं।'

देवी बोली, 'आपको कुछ नहीं करना है। आप नीचे जाकर निशि के पास बैठें।'

निशि और ब्रज नीचे गए। निशि ने अपनी वंशी निकाली। उसने वंशी पर मल्हार छेड़ा। रंगराज बजड़े पर आ गए।

ब्रजेश्वर निशि से बोला, 'तुम छत पर जाओ। क्या बातें होती हैं, आकर मुझे बताना।'

निशि स्वीकार कर कमरे के बाहर निकली और फिर लौटकर ब्रजेश्वर से बोली, 'जरा बाहर आकर देखिए।' ब्रजेश्वर ने देखा तो जंगल में से असंख्य लोग निकल रहे थे। उसने पूछा, 'ये कौन हैं ? सिपाही हैं क्या ?'

'ये बरकन्दाज हैं। रंगराज के सैनिक।'

देवी भी उन्हीं को देख रही थी। तभी रंगराज ने आकर उन्हें आशीर्वाद दिया। देवी ने पूछा, 'तुम यहां कैसे रंगराज ?'

'मैं देवीगढ़ जा रहा था। रास्ते में ठाकुरजी से भेंट हो गई।'

'भवानी ठाकुर से ?'

'उनसे सुना कि कम्पनी के सिपाही आपको पकड़ने आ रहे हैं। हम दोनों बरकान्दज इकट्ठे करके इधर आए हैं। अब उनकी नाव को इधर आते देखकर मैंने शंख बजाकर संकेत दिया था।'

'उस जंगल में भी सिपाही हैं ?'

'हम लोगों ने उन्हें घेर लिया है।'

'ठाकुर जी कहां हैं ?'

'वह बरकन्दाजों को लेकर बाहर निकल रहे हैं ?'

'तुम कितने वरकन्दाज लाए हो ?'

'एक हजार के लगभग होंगे ।'

'सिपाही कितने होंगे ?'

'पाच सौ ?'

'पन्द्रह सौ की लड़ाई मे कितने मरेंगे ?'

'दो चार सौ मर सकते हैं ।'

'ठाकुर जी से कहो, इस काम से मुझे मर्मान्तक पीड़ा पहुची है ।'

'क्यों मां ?'

'मेरे प्राण वचाने के लिए तुम लोग इतने लोगों के संहार को उद्यत हुए हो । तुम्हें धर्म-ज्ञान नहीं है ? मेरी आयु समाप्त हो चुकी है । मैं अकेली ही मरूंगी । मेरे लिए चार सौ आदमी क्यों मरें ? मुझे क्या तुम लोगों ने इतना नीच समझा है कि मैं इतने लोगों का प्राण लेकर अपना प्राण वचाऊंगी ?'

'आपके रहने से अनेकों प्राणों की रक्षा होगी ।'

देवी ने क्रोधपूर्ण स्वर मे कहा, 'रंगराज ! ठाकुर जी से कहो कि इसी क्षण वरकन्दाजों के साथ लौट जाएं । विलम्ब होगा तो मैं पानी मे कूदकर प्राण दे दूगी ।'

रगराज का मुह उतर गया । वह बोला, 'मैं जा रहा हूं मां ! ठाकुर जी से कह दुगा । वह जो उचित समझेंगे, करेंगे । मैं तो दोनों का आज्ञाकारी हू ।'

रंगराज चला गया । निशि रंगराज के जाने के बाद देवी से बोली, 'अपने प्राणों को तुम जो जी चाहे करो, परन्तु आज तुम्हारे पति तुम्हारे पास हैं । उनका भी खयाल नहीं किया तुमने ?'

'किया है बहिन ! खयाल करके भी मैं कुछ न कर पाई । अब जगदीश्वर का भरोसा है । अपने पति का प्राण बचाने के लिए भी मैं इतने व्यक्तियों के प्राण नहीं ले सकती । मेरे पति मेरे लिए सब कुछ हैं, परन्तु उनके यह कौन है ?'

निशि चकित रह गई । वह बोली, 'देवी ने सच्चा निष्काम धर्म सीखा है । आपके साथ मरना भी सुखकर होगा ।'

निशि ने यह सब ब्रजेश्वर से कहा। ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को अपनी स्त्री न समझ सका। उसने कहा, 'वह सचमुच देवी हैं। मैं महापापी उसे डाकू कहकर उसकी भर्त्सना करने चला था।'

नाव बजड़े के निकट आ गई। प्रफुल्ल निश्चल बैठी रही।

प्रफुल्ल की दृष्टि दूर आकाश पर लगी थी। वह 'जय जगदीश्वर' कहकर छत से नीचे उतर आई।

निशि ने पूछा, 'अब क्या करोगी देवी?'

'अपने पति की रक्षा।'

'और अपनी।'

'मेरी बात न पूछो। मैं जो कहती या करती हूं उसे सावधानी से देखो। मेरा तुम्हारा चाहे जो हो, मुझे अपने पति, दिवा और ससुर को बचाना है।'

यह कहकर देवी ने शंख में फूंक मारी। निशि बोली, 'यह अच्छा किया आपने।'

: १५ :

जंगलों से बरकन्दाजों का दल बाहर निकलने लगा। उन्होंने देखा, नावें काफी निकट आ चुकी थी और वे बजड़ा घेर लेंगी। वे दौड़ पड़े। 'रानी जी की जय' कहकर वे बजड़ा घेरने चले। उन्होंने बजड़ा घेर लिया और नावों ने उन्हें घेर लिया शंख बजाते ही बरकन्दाज बजडे पर आ चढ़े। वे बजडे के मांझी थे। वे अपने-अपने स्थान पर डांड़, पतवार पकड़कर बैठ गए। सिपाहियों ने बन्दूकों पर संगीनें चढ़ा कर उन पर आक्रमण किया। चारों ओर लड़ाई होने लगी।

प्रफुल्ल ने सोचा, 'भवानी ठाकुर तक उनकी बात पहुंच नहीं पाई, या उन्होंने सुनी नहीं। अच्छा आज वह भी मेरा काम देखें।'

देवी के पास एक सफेद झण्डा था। उन्होंने बाहर आकर उसे फहरा दिया।

उस झण्डे को देखते ही लड़ाई बन्द हो गई। जो जहां था, हथियार रोककर खड़ा हो गया। देवी ने ब्रजेश्वर से कहा, 'तुम यह झण्डा पकड़े रहो। रंगराज यहां आएं तो उनसे कहना कि अन्दर आयें।'

यह कहकर देवी ब्रजेश्वर को झण्डा पकड़ाकर अन्दर चली गई। तभी रंगराज वहां आया। उसने ब्रजेश्वर के हाथ में सफेद झण्डा देखकर पूछा, 'तुमने किसकी आज्ञा से यह झण्डा फहराया?'

'रानी जी की आज्ञा से।'

'तुम कौन हो?'

'पहिचान नहीं रहे?'

रंगराज बोले, 'पहिचान गया। तुम ब्रजेश्वर बाबू हो? यहां क्यों आए हो? बाप-बेटे एक ही काम से आए हो क्या? कोई इसे बांधो।'

आज्ञा पाकर दो व्यक्ति ब्रजेश्वर को बांधने के लिए आए। ब्रजेश्वर ने कोई आपत्ति न की। वह बोले, 'मुझे बांध लो, कोई हानि नहीं, परन्तु यह बताओ कि सफेद झण्डा देखकर युद्ध रुक क्यों गया?'

रंगराज बोले, 'जानते नहीं सफेद झण्डा देखकर अंग्रेज लड़ाई बन्द कर देते है।'

'मैं नहीं जानता था। खैर, तुम पूछ आओ कि मैंने रानी जी की आज्ञा से सफेद झण्डा फहराया है। तुम्हारे लिए आदेश है कि उनसे आज्ञा प्राप्त करो।'

रगराज सीधा अन्दर पहुंचा। वह बोला, 'रानी मां!'

'कौन, रगराज?'

'जी हां। हमारे बजड़े से सफेद झण्डा क्यों दिखाया गया?'

'मैंने आज्ञा की है। तुम सफेद झण्डा लेकर लेफ्टिनेंट के पास जाओ और कहो कि लड़ने की आवश्यकता नही है। मैं आत्मसमर्पण कर रही हूं।'

'मेरा शरीर रहते यह न होगा।' रंगराज बोला।

'प्राण देकर भी मेरी रक्षा न कर सकोगे।'

'तब भी प्राण दूंगा।'

'मूर्खों जैसी बातें न करो। सिपाहियों की बन्दूकों के सामने लाठी-सोटा नहीं चलेगा।

रक्त एक बूंद नहीं बहेगा। मैं गोली के सामने खड़ी हो जाऊंगी। तुम मुझे न बचा पाओगे। इस समय पकड़े जाने से भागने का अवसर रहेगा। मुझे छुड़ाने में अपना प्राण न दो। मेरे पास बहुत रुपया है। कम्पनी के आदमी रुपए के दास हैं। मैं भाग निकलूंगी।'

देवी ने घूस देकर भागने की बात रंगराज को फुसलाने के लिए कही थी। वैसे उन्होंने सरल भाव से आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया हुआ था।

रंगराज बोले, 'जो देकर आप उन्हें अपने-वश में करेंगी, वह तो बजड़े में है। पकड़ी जाने पर अंग्रेज बजड़ा भी ले लेंगे।'

'तुम उनसे कह देना कि केवल मुझे ही पकड़ सकेंगे, बजड़े को नहीं। मैं इसी शर्त पर आत्मसमर्पण करने को उद्यत हूं।'

'यदि वे न मानें और बजड़ा लूटने आएं तब ?'

'कह देना बजड़े पर आयेंगे तो मैं नहीं पकड़ी जाऊंगी। उनके बजड़े पर चढ़ते ही लड़ाई शुरू हो जाएगी। हमारी बात स्वीकार करें तो मैं स्वयं उनकी नाव पर चली जाऊंगी।'

रंगराज ने सोचा, इस सब में अवश्य कोई कौशल है।

देवी ने पूछा, 'भवानी ठाकुर कहां हैं ?'

'वह बरकान्दाजों को लेकर युद्ध कर रहे हैं। उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी। शायद वह वहीं होंगे।'

'पहिले उनके पास जाओ। उनसे कहो कि तुरन्त लौट जायें। मेरे लिए बजड़े के लोगों को छोड़ जाएं। मेरी रक्षा के लिए युद्ध की आवश्यकता नहीं है। मेरी रक्षा का भगवान उपाय कर रहे हैं।'

रंगराज बोले, 'मां! एक आज्ञा चाहता हूं। हरिवल्लराय आज का मुखबिर है। उसके लड़के ब्रजेश्वर को मैंने नाव पर देखा है। उसका उद्देश्य अच्छा नहीं है। उसे बांधकर रखना चाहता हूं।'

यह सुनकर निशि और दिवा हंस पड़ीं।

देवी बोली, 'नहीं, बांधना नहीं। उन्हें अभी चुपचाप छत पर बैठा रहने को कहो।'

रंगराज ने ब्रजेश्वर को छत पर बिठा दिया और भवानी ठाकुर को जाकर देवी का संदेश दिया। आकाश में मेघ देखकर भवानी ने आपत्ति नहीं की। वह बरकन्दाजों के साथ लौटने लगे।

तभी निशि मल्लाहों के कान में कुछ कह गई।

भवानी ठाकुर को विदा कर रंगराज सफेद झण्डा लेकर लेफ्टिनेण्ट के पास गया। कोई उससे कुछ नहीं बोला। साहब ने पूछा, 'तुम लोग आत्मसमर्पण करोगे ?'

'हम लोग नहीं, आप जिसे पकड़ने आए हैं, वह आत्मसमर्पण कर रही हैं।'

'देवी चौधरानी आत्मसमर्पण करेंगी ?'

'जी हां।'

'और तुम लोग ?'

'हम लोग कौन ?'

'देवी चौधरानी के दल के लोग ?'

'वे नहीं करेंगे।'

'मैं उन्हें उनके दल के साथ पकड़ने आया हूं।'

'दल में कौन-कौन हैं ? इन हजारों बरकन्दाजों में से कितनों को पकड़ेंगे आप ?'

भवानी ठाकुर अभी गए नहीं थे, जाने का प्रयत्न कर रहे थे।

साहब बोले, 'ये सब डाकू हैं। हम इन सबको पकड़ेंगे।'

तभी साहब ने देखा बरकन्दाज सेना जा रही थी। वह गरजकर बोले, 'तुम लोग सफेद झण्डा दिखलाकर भाग रहे हो ?'

'तुमने पकड़ा किसे है, जो भाग रहे हैं। अभी कोई नहीं भागा है। पकड़ सको तो पकड़ो।' यह कहकर रंगराज ने सफेद झण्डा फेंक दिया। सिपाही साहब की आज्ञा न पाकर चुपचाप खड़े रहे।

साहब ने उनका पीछा करना व्यर्थ समझा। वह बोले, 'उन्हें जाने दो। तो तुम सब आत्मसर्पण करोगे ?'

'केवल देवी रानी।'

'अब लड़ेगा कौन? ये थोड़े से लोग? तुम्हारी सेना तो जंगल में घुस गई।'

रंगराज ने देखा भवानी ठाकुर जंगल में जा चुके थे। वह बोले, 'मैं यह नहीं जानता। मुझे जो आज्ञा मिली है वह कहता हूं। बजड़ा नहीं मिलेगा, बजड़े का धन नहीं मिलेगा, हममें से कोई नहीं मिलेगा, केवल देवी रानी मिलेंगी।'

'क्यों?'

'मैं नहीं जानता।'

'मैं सबको कब्जे में करूंगा।'

'साहब बजड़े पर मत चढ़ना, उसे छूना नहीं, वरना शामत आ जाएगी।'

'हमारा पांच सौ सिपाहियों का तुम्हारा दो-चार आदमी आफत करेगा?' यह कहकर साहब ने भी सफेद झण्डा फेंक दिया और सिपाहियों से कहा, 'बजड़ा घेरो।'

साहब ने आदेश दिया, 'बजड़े पर चढ़कर बरकन्दाजों के हथियार छीन लो।'

देवी ने आदेश दिया, 'बजड़े पर जिसके पास हथियार हो पानी में फेंक दो।' सुनते ही बजड़े के हथियार पानी में गिर गए। यह देखकर साहब बोले, 'अब बजड़े पर देखता हूं क्या है।'

'आप बल-प्रयोग कर ऊपर न चढ़ें। आपको कुछ हो जाए तो मुझे दोष न देना।'

'तुम्हारा क्या दोष?' यह कहकर साहब एक सशस्त्र सिपाही के साथ बजड़े पर चढ़ गए।

साहब रंगराज के साथ अन्दर पहुंचे तो द्वार खुल गया। कमरे का ठाट देखकर साहब आश्चर्यचकित रह गए।

दो मसनदों पर स्वर्ण-रत्न आदि से आभूषित दो सुन्दरियां बैठी थीं। उनके बदन पर बहुमूल्य वस्त्र और अलंकार थे। रंगराज ने देखा उनमें एक निशि थी, एक दिवा।

साहब के लिए एक चांदी की चौकी रक्खी गई। वह उस पर बैठ गए। रंगराज देवी को खोज रहे थे। एक कोने में साधारण वेश में देवी खड़ी थी।

साहब ने पूछा, 'देवी चौधरानी कौन है ? किससे बातें करूं ?'

निशि बोली, 'मुझसे बात कीजिए। मैं देवी हूं।'

दिवा हंसकर बोली, 'दिल्लगी न करो ? यह दिल्लगी का समय नहीं है। लेफ्टिनेण्ट ! यह मेरी बहिन दिल्लगी बहुत करती है, परन्तु यह दिल्लगी का अवसर नहीं है। आप मुझसे बातें कीजिए, मैं देवी चौधरानी हूं।'

निशि बोली, 'तू क्यों मेरे लिए फांसी चढ़ना चाहती है ?' फिर साहब से बोली, 'यह मेरी बहिन है। स्नेहवश मुझे बचाने के लिए आपको धोखा दे रही है। मैं इसके प्राण लेकर अपने प्राण नही बचा सकती ? चलिए कहां चलना होगा, मैं देवी चौधरानी हूं।'

दिवा बोली, 'साहब ! आपको ईसा की कसम,जो आप निरपराध को पकड़ें। देवी मैं हूं।'

साहब परेशान होकर रंगराज से बोले, 'यह क्या गोलमाल है ? तुम बताओ, इनमें देवी चौधरानी कौन है।'

रंगराज केवल यही समझ रहा था कि उसमे कोई भेद था। वह निशि की ओर संकेत करके बोला, 'हुजूर, यह देवी रानी हैं।'

तब देवी आगे बढ़कर बोलीं, 'मुझे इस बीच मे न आना चाहिए, परन्तु झूठी बात पकड़ी जाने पर सब मारे जाएंगे, इसलिए कहती हूं यह झूठ है।'

साहब ने देवी से पूछा, 'तब देवी कौन है ?'

'मैं देवी हूं।' वह बोली।

अब देवी, निशि, दिवा और रंगराज में झगड़ा होने लगा।

लेफ्टिनेण्ट साहब बोले, 'तुम दोनों में से कौन देवी रानी है। वह दासी है। यह देवी नहीं हो सकती। मैं दोनों को पकड़कर ले जाऊंगा। बाद में जो देवी चौधरानी सिद्ध होगी, उसे फांसी दी जाएगी।'

तब निशि और दिवा बोलीं, 'इतने झंझट की क्या बात है ? आप

मुसबिर को बुला लें। वह बता देगा कौन देवी चौधरानी है।'

देवी का अभिप्राय हरवल्लभ को बजड़े पर बुलाना था। उनकी रक्षा का उपाय किए बिना देवी अपनी रक्षा का उपाय न करतीं।

साहब ने मुसबिर को बुलाने की आज्ञा दी।

हरिवल्लभ कमरे की ओर बढ़े। वह कमरे की सजावट को देखकर चकित रह गए। वह साहब को सलाम करना भूलकर निशि को सलाम कर बैठे। निशि हंसकर बोली, 'वन्दगी खां साहब! मिजाज तो खुश हैं आपके?'

दिवा हंसकर बोली, 'खां साहब बन्दगी। मुझे सलाम नहीं की। रानी को भूल गए आप?'

साहब हरिवल्लभ से बोले, 'ये दोनों अपने को देवी चौधरानी कहती हैं। इनमें कौन देवी चौधरानी है?'

हरिवल्लभ बड़ी कठिनाई मे पड़े। उन्होंने देवी को नहीं देखा था। कुछ सोचकर उन्होंने निशि की ओर संकेत किया। निशि खिलखिलाकर हंस पड़ी। वह घबराकर बोले, 'भूल हुई।' इतना कहकर उन्होंने दिवा को ओर उंगली उठा दी। दिवा भी खिलखिलाकर हंस पड़ी। हरिवल्लभ ने घबड़ाकर फिर निशि को दिखलाया। साहब गरम होकर बोले, 'बद-जात! सूअर! पाजी कहीं का। पहिचानता नहीं। बदमाशी करता है हमारे साथ।'

दिवा बोली, 'साहब! शायद हमें यह नहीं पहिचानते। इनका लड़का पहिचानता है। वह बजड़े की छत पर है। वह पहिचान लेगा।'

हरिवल्लभ घबड़ाकर बोले, 'मेरा लड़का ब्रजेश्वर!'

'जी हां, वही।'

'वह कहां है?'

'बजड़े की छत पर है।'

'वह यहां कैसे आया?'

'यह सब तो वही बताएंगे।'

साहब ने उसे बुलाने की आज्ञा दी। रंगराज ने ब्रजेश्वर से कहा, 'आपको दिवा ठकुरानी बुला रही हैं।'

ब्रजेश्वर उतरकर कमरे में आया। साहब ने ब्रजेश्वर से पूछा, 'तुम देवी चौधरानी को पहिचानते हो ?'

'जी, पहिचानता हूं।'

'देवी चौधरानी इनमें कौन-सी है ?'

'वह इनमें नहीं है।'

साहब क्रोध से पागल होकर बोला, 'क्या इन दोनों में कोई भी देवी चौधरानी नहीं है ?'

'ये दोनों उनकी दासी हैं। वह इनमें नहीं हैं।'

'तुम देवी को पहिचानते हो ?'

'अच्छी तरह पहिचानता हूं।'

'यदि ये देवी नहीं हैं तो वह बजड़े पर कहीं छिपी होगी। शायद वह दासी ही देवी हो। मैं बजड़े की तलाशी लूंगा। तुम मेरे साथ चलकर मुझे बताओ।'

'आप तलाशी लो, मैं क्यों बताऊं ?'

साहब गरजकर बोले, 'बदजात! तुम मुखबिर नहीं हो ?'

'नहीं, मैं आपका मुखबिर नहीं हूं।'

'सर्वनाश!' हरिवल्लभ के मुख से निकला।

बाहर से जमादार चिल्लाया, 'हजूर तूफान।'

आसमान से भयंकर वेग से आती हुई हवा सांय-सांय करने लगी। कम्पनी की नावें आपस में टकराने लगीं।

साहब गरजकर बोला, 'तुम मुखबिर का लड़का नहीं है, हरामखोर बदमाश ?'

ब्रजेश्वर साहब की गाली सहन न कर सका। उसने उसके गाल पर इतने जोर का घूंसा लगाया कि वह लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा।

तभी कमरे में शंखनाद हुआ।

शंख बजते ही मल्लाह रस्से खोलकर बजड़े पर चढ़ गए। किनारे के सिपाहियों ने संगीनें उठाईं, परन्तु वे उठी ही रह गईं। पलक मारते देवी के कौशल से एक क्षण में कम्पनी के पांच सौ सिपाही खड़े-के-खड़े रह गए।

प्रचण्ड वेग से आंधी का झोंका आया और बजड़ा घूम गया। साहब ब्रजेश्वर पर घूंसा उठा रहे थे, तभी उन्हें रंगराज ने पीछे से कस कर पकड़ लिया।

रंगराज के साहब को पकड़ने पर एक सशस्त्र सैनिक उन पर झपटा। ब्रजेश्वर ने उसकी बन्दूक उससे छीनकर नदी में फेंक दी।

रंगराज ने साहब की तलाशी लेकर उनका रिवाल्वर छीन लिया और उसे भी नदी के हवाले कर दिया। अब साहब चुपचाप चांदी की चौकी पर बैठ गए।

साहब की फौज, जो बजड़े को घेरे खड़ी थी, बजड़ा उस पर से होकर निकल गया। कुछ ने डुबकी लगाकर प्राण बचाए। पानी अधिक न था, इसलिए कोई मरा नहीं। बजड़ा टूटे तारे के समान उड़ता हुआ आंधी के साथ उड़ चला। सिपाहियों की सेना छिन्न-भिन्न हो गई। लेफ्टिनेण्ट और हरिवल्लभ अब उनके बन्दी थे।

: १६ :

बजड़ा पानी को चीरता हुआ, तीर की तरह उड़ा जा रहा था। भयंकर शब्द हो रहा था।

रंगराज बाहर द्वार से पीठ लगाकर बैठ गए। उस समय बाहर से सतर्क रहने की आवश्यकता थी, क्योंकि बजड़ा बहुत ही तीव्रगति से भागा जा रहा था।

दिवा देवी के पास चली गई। निशि वहीं बैठी रही।

साहब सोच रहे थे कि अब डाकुओं से छुटकारा कैसे मिले। वह जिन्हें पकड़ने आए थे उन्हीं के हाथों पकड़े गए। अब कलक्टर को क्या मुंह दिखाएंगे?

हरिवल्लभ निशि के पास बैठे थे। निशि बोली, 'आप थोड़ा लेट

सोजिए, थक गये होंगे।'

'आज नींद नहीं आएगी।'

'आज न आएगी तो कब आएगी ?'

'क्यों फिर क्या होगा ?'

'आप देवी चौधरानी को पकड़वाने आए थे न ? देवी पकड़ी जातीं तो क्या होता ? जानते हो उन्हें फांसी दी जाती। वही आपके साथ किया जाएगा ?'

'ऐं ! फांसी…।'

'देवी ने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया था, जो तुम इस नीच कर्म पर उद्यत हुए। तुम जेल जा रहे थे। देवी ने तुम्हें पचास हजार रुपया देकर तुम्हारी रक्षा की। तुमने भलाई का यह बदला दिया ? तुमने उन्हें फांसी दिलवानी चाही। बोलो, तुम जैसे नीच को क्या दण्ड मिलना चाहिए।'

हरिवल्लभ चुप रहे। उनके मुख से एक शब्द भी न निकला।

निशि बोली, 'इसी से कहती हूं सोलो। फिर सोना न मिलेगा। नौका कहां जा रही है, जानते हो ?'

हरिवल्लभ में बोलने की शक्ति नहीं थी। उन्होंने निराश दृष्टि से निशि की ओर देखा।

निशि बोली, 'हम लोग अब श्मशान में जा रहे हैं। वहां जाकर साहब को फांसी दी जाएगी और जानते हो तुम्हारे लिए क्या आज्ञा हुई है देवी की ?'

हरिवल्लभ हाथ जोड़कर बोला, 'मुझे बचाओ। मुझे फांसी न देना। मेरी ब्राह्मणी रोएगी।'

'कौन पापी तुम्हें बचाए ? तुम्हें सूली पर चढ़ाया जाएगा।'

हरिवल्लभ फफक-फफककर रोने लगे। आंधी के भीषण नाद में उनके रोने की आवाज किसी ने न सुनी। साहब उनका रोना सुनकर बोला, 'रो मत उल्लू ! मरना तो एक ही बार है। क्या रोज-रोज मरेगा तू ?'

हरिवल्लभ रोकर बोले, 'क्या तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकतीं ?'

गयी है, परन्तु तुम्हारे लिए उनसे कौन दया की भीख मांगे ?'

'मैं एक लाख रुपया दूंगा। तुम मुझे बचाओ ?'

'कहते लज्जा नहीं आती। पचास हजार रुपए के लिए तो तुमने यह कृतघ्नता बरती। अब लाख रुपए की बात हांकते हो ?'

'मुझसे जो कहोगी वही करूंगा, परन्तु मेरी जान बचाओ।'

निशि सोचकर बोली, 'एक काम निकल सकता है, परन्तु नहीं। मैं तुमसे कोई काम नहीं कराऊंगी।'

'तुम्हारे पैर पकड़ता हूं।' यह कहकर हरिवल्लभ ने निशि के पैर पकड़ लिए।

'तुम कृतघ्न, पापी, और मुखबिर हो। तुम्हारी बात का विश्वास कैसे किया जाए ?'

'तुम जो कसम कहो, खाने को तैयार हूं।'

'ब्रजेश्वर के माथे की कसम खा सकते हो ?'

हरिवल्लभ को उस समय अपने प्राणों की पड़ी थी। वह हाथ जोड़कर बोले, 'ब्रजेश्वर की कसम तुम जो कहोगी मैं वही करूंगा।'

'तुम तो हमारी मुट्ठी में हो। सुनो, मैं कुलीन की लड़की हूं। मेरी छोटी बहिन के लिए वर नहीं मिला है। मैं उसके विवाह की चिन्ता में हूं।'

'आयु कितनी है उसकी ?'

'यही तीस वर्ष होगी।'

'कुलीनों में यही सब कुछ होता है।'

'उसका विवाह न होने से मेरे पिता की जात चली जाएगी। तुम मेरे पिता का उद्धार करो। तुम मेरी बहिन से विवाह कर लो। मैं यही कहकर रानी जी से तुम्हारे प्राणों की भिक्षा मांग सकती हूं।'

हरिवल्लभ को अब कुछ सांस आया, परन्तु साथ ही गृहणी का ध्यान आया तो वह कांप उठे। नई ब्राह्मणी को लेकर घर गए तो वह घर में नहीं घुसने देगी। फिर भी हरिवल्लभ प्राणों के लोभ में बोले, 'यह कौन बड़ी बात है ? कुलीनों की जात बचाना कुलीनों का धर्म है। पर मैं वृद्ध हूं, मेरी आयु क्या विवाह करने की है ? मेरा लड़का विवाह

कर ले तो क्या काम न चलेगा ?'

'वह राजी हों तो उनसे भी काम चल सकता है।'

'मैं उससे कहूंगा तो राजी क्यों न होगा ?'

'तब आप उन्हें ही आज्ञा दें। मैं आपको पालकी मंगाकर घर भेज दूंगी। आप घर पहुंचकर बहू-भात का प्रबन्ध करें। हम ब्याह करके बहू को उनके साथ भेज देंगी।'

हरिवल्लभ कहां सूली पर चढ रहे थे और कहां बहू-भात की तैयारी का काम उन्हें मिल गया। वह बोले, 'रानी जी से ये सब बातें कर लो। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।'

'मैं जा रही हूं।' कहकर निशि कमरे में चली गई। उसके जाने पर साहब हरिवल्लभ से बोले, 'वह स्त्री तुमसे क्या-क्या बातें कर रही थी ?'

'कोई विशेष बात नहीं की उसने।'

'तुम रो क्यों रहे थे ?'

'कहां रो रहा था मैं ?'

मैं तो हंस रहा हूं।' यह कहकर हरिवल्लभ ने हंसने का प्रयास किया।

निशि से देवी ने पूछा, 'ससुर जी से तुम क्या बातें कर रही थी अभी ?'

'देख रही थी कि मैं तुम्हें तुम्हारी सास बन सकती हूं या नहीं।'

'निशि ! तुमने अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण को समर्पण कर दिया है, परन्तु देखती हूं फिर भी उपहास अपने लिए बचा रखा है।'

'देवता को अच्छी चीजें ही देनी चाहिएं, खराब चीजें नहीं।'

आंधी रुकने पर नाव किनारे से लगी। देवी ने देखा प्रभात वेला आ गई थी।

वह निशि से बोली, 'निशि ! आज का यह प्रभात देख रही हो कितना सुहावना है।'

निशि ने मुस्करा कर कहा, 'आज तुम्हारा अवसान और मेरा उदय हुआ है।'
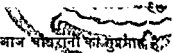
'मेरा अवसान ही मेरा सुप्रभात है। आज चौधरानी का सुप्रभात है, क्योंकि आज उसका अवसान है। अवसान मे ही जीवन का उत्थान होता है निशि ! आज मेरे जीवन को वास्तविक शान्ति प्राप्त हुई है। आज मेरे हृदय की जलन शान्त हुई।'

निशि मौन रही। फिर कुछ ठहर कर बोली, 'आज देवी मर गई। प्रफुल्ल ससुराल जा रही है।'

'उसमें अभी देर है। तुम नाव बांधने को कहो।'

निशि ने मांझियों को बजड़ा किनारे बांधने की आज्ञा दी।

देवी ने कहा, 'रंगराज से पूछो, हम कहां पहुंचे ? यहां से रंगपुर और भूतनाथ कितनी दूर हैं ?'

रंगराज ने बताया, 'रंगपुर का यहा से कई दिन का रास्ता है। भूतनाथ एक दिन मे पहुंचा जा सकता है।'

देवी निशि से बोली, 'ससुर जी को स्नान के बहाने बजड़े से नीचे भेज दो।'

दिवा बोली, 'इतनी क्या शीघ्रता है ?'

निशि रंगराज को बुलाकर हरिवल्लभ को सुनाती हुई बोली, 'साहब को फांसी देनी होगी। ब्राह्मण को अब सूली नहीं दी जाएगी, उसे स्नान के लिए भेज दो।'

हरिवल्लभ ने पूछा, 'मेरे लिए रानीजी की क्या आज्ञा है ?'

निशि बोली, 'मेरी प्रार्थना स्वीकार हो गई है। तुम स्नान करने आओ।'

रंगराज ने प्रबन्ध करके हरिवल्लभ को स्नान करने के लिए बजड़े से नीचे उतार दिया।

देवी निशि से बोली, 'साहब को भी छोड़ देने को कहो। वह रंगपुर लौट जाएं। उन्हें सौ मोहरें दे दो ?'

निशि ने सौ मोहरें रंगराज को देकर आदेश दिया।

रंगराज साहब से बोला, 'साहब ! उठो।'

'मुझे कहा जाना होगा ?'

'तुम हमारे कैदी हो। तुम यह पूछने वाले कौन होते हो ?'

`. साहब चुपचाप रगराज के पीछे-पीछे चल दिया। वह चलकर उसी घाट से गुजरे जिस पर हरिवल्लभ स्नान कर रहे थे।

उन्होंने रंगराज से पूछा, 'साहब को कहां ले जा रहे हो?'

रगराज बोले, 'इस सामने वाले जगल में।'

'वहां ले जाकर इनका क्या करोगे?'

'जगल मे ले जाकर इन्हे फांसी दी जाएगी।'

हरिवल्लभ कांप उठे। वह गायत्री का जाप भूल गए। फिर सन्ध्या भी ठीक से नहीं कर सके।

जगल में ले जाकर रगराज साहब से बोला, 'हम लोग किसी को फासी नही देते और न ही हम कही डाका डालते है। देवी जी ने अब तक अपने जीवन मे कभी कोई डाका नहीं डाला। तुम सीधे अपने घर लौट जाओ। हमारे पीछे न लगना। जाओ, तुम्हे मुक्त किया।' फिर पूछा, 'रंगपुर यहा से दूर है। जाओगे कैसे?'

'जैसे भी होगा, चला जाऊगा।'

'नाव ले लेना या गांव मे जाकर घोडा खरीद लेना या पालकी कर लेना। ये लो, रानी ने तुम्हें ये सौ मोहरें मार्ग-व्यय के लिए दी हैं।'

साहब देवी का यह व्यवहार देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसने केवल पाच मोहरें ली और बोला, 'इनसे मेरा काम चल जाएगा। मैं यह ऋण ले रहा हूं।'

'हम लेने आयें तो अदा कर देना। तुम्हारा कोई सिपाही घायल हुआ या मर गया हो तो सूचना देना।'

'क्यो?'

'रानी उसकी सहायता करेगी।'

साहब को विश्वास न हुआ। वह कुछ कहे बिना ही वहा से चुपचाप चला गया।

रगराज निकट के गांव से पालकी लेकर बजडे की ओर चलपडे।

ब्रजेश्वर अन्दर जाकर देवी के पास बैठ गए थे। देवी बोली, 'तुम्हारी आज्ञा का मैंने पालन किया। तुमने जान बचाने को कहा था,

सो मैंने बचा दी। आज देवी चौधरानी मर चुकी। अब प्रफुल्ल जीवित रहे या देवी के साथ प्रस्थान करे ?'

ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को बाहुओं मे भरकर बोला, 'अब मेरी प्रफुल्ल को कोई मुझसे पृथक नहीं कर सकता। तुम मेरे साथ न चलोगी तो मैं भी न जाऊंगा।'

'मैं घर चलूं ! ससुर जी से पूछ लिया है ? आप तो मुझे तब भी घर से निकालना नहीं चाहते थे।' उन्हें भेज दो। हम दोनों पीछे चलेंगे। उन्हें मैं ठीक कर लूंगा।

तभी रगराज पालकी लेकर आ गया। हरिवल्लभ भी सन्ध्या-पूजा करके लौट आए थे। उन्होंने ब्रजेश्वर को बुलाया। उन्होंने सोचा, 'मेरे लड़के को देखकर डाकू औरतें भी मुग्ध हो गई हैं। चलो अच्छा ही हुआ। अपनी जान तो बच गई।'

वह ब्रजेश्वर से बोले, 'ब्रज ! तुम यहां कैसे आए ? खैर, यह बात पीछे होगी। मैंने इन लोगों को एक वचन दिया है। वह तुम्हें पूरा करना होगा। निशि ठकुरानी कुलीन हैं। इनके पिता को अपनी पुत्री के लिए वर नहीं मिल रहा है। इनकी जात जा रही है। कुलीनों की जात बचाना कुलीनों का धर्म है। मेरी इच्छा है कि तुम इनका उद्धार करो। तुम इसकी बहिन से विवाह कर लो।'

'इसकी बहिन से विवाह कर लूं !' कुछ समझ में न आया।

निशि को हंसी आई, परन्तु वह गम्भीर बनी रही।

हरिवल्लभ बोले, 'मेरे लिए पालकी आ गई है। मैं घर जाकर बहू-भात का प्रबंध करूंगा। तुम विवाह करके बहू को लेकर घर आना।'

हरिवल्लभ ने प्रस्थान किया। उन्होंने पालकी पर चढ़कर दीर्घ श्वांस ली। मन में सोचा, 'चलो जान बची।'

हरिवल्लभ के चले जाने पर ब्रजेश्वर ने निशि से पूछा 'यह सब क्या गोल-माल हुआ ? तुम्हारी बहिन कौन है ?'

'नहीं जानते ? उसका नाम प्रफुल्ल है।'

ब्रजेश्वर बोले, 'निशि ! मैंने तुम्हारी सब बातें सुनी थीं, परन्तु मैं इस प्रकार का छल नहीं करूंगा। मैं प्रफुल्ल को लेकर घर जाऊंगा और वहां

पिताजी से सब बातें खोलकर कहूंगा।'

'क्या तुम्हारे पिता देवी चौधरानी को घर में घुसने देंगे ?'

देवी बोली, 'देवी चौधरानी की मृत्यु हो चुकी। अब प्रफुल्ल की बात करो निशि।'

'प्रफुल्ल को ही क्या वह घर में घुसने देंगे ? प्रफुल्ल को तो उन्होंने पहिले ही घर से निकाल दिया था।'

ब्रजेश्वर बोले, 'यह सब मुझे देखना है निशि, अन्य किसी को नहीं। अब प्रफुल्ल को मुझसे पृथक करने वाली कोई शक्ति नहीं है। ब्रजेश्वर वहीं रहेगा, जहां प्रफुल्ल रहेगी।'

ब्रजेश्वर के इन शब्दों को सुनकर देवी, दिवा और निशी को असीम शान्ति प्राप्त हुई।

वहां से वे लोग भूतनाथ के घाट पर पहुंचे। घाट पर बजड़ा लगते ही गांव वाले ब्रजेश्वर की नई बहू को देखने के लिए उतावले हो उठे। गांव की स्त्रियां उसे देखने दौड़ीं। बहू को देखने के लिए भीड़ लग गई। सास ने घूंघट उठाकर बहू का मुंह देखा तो चौंकी, परन्तु बोली, 'बहू बहुत अच्छी है।' उसकी आंखों में पानी भर आया। वह अन्य देखने आने वाली स्त्रियों से बोली, 'मेरे बेटा बहू बहुत दूर से चलकर भूखे, प्यासे आ रहे हैं। वह अब यहीं रहेगी। तुम लोग रोज देखोगी। इस समय अपने घर जाओ।'

पड़ोसिनें अपने-अपने घर लौट गईं। 'भीलनी-सी बहू है' कहकर सभी ने घृणा प्रकट की। कोई बोली, 'कुलीनों के यहां यही होता है।'

गृहिणी ब्रजेश्वर से एकान्त में बोली, 'बहू कहां मिली बेटा ?'

'यह नया विवाह नहीं है मां ! क्या अपनी प्रफुल्ल को आप पहिचानती नहीं।'

'मैं यही पूछ रही हूं कि यह खोया धन कहां से प्राप्त हुआ बेटा ?' उसकी आंखों में आंसू आ गए।

'विधाता की कृपा से प्राप्त हुआ है मां ! पिताजी से कुछ न कहना। मैं उन्हें सब कुछ समझा दूंगा।'

'तुम्हें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है बेटा ! मैं सब कह

दूंगी। बहू-भात हो जाए। तुम चिन्ता मत करो। तुम किसी से कुछ मत कहना।'

गृहिणी हरिवल्लभ से बोली, 'यह नया विवाह नहीं है। भाग्य से हमें अपनी बड़ी बहू मिल गई है।'

यह सुनकर हरिवल्लभ चौंक उठे, मानो उन्हें बिच्छू ने काट लिया। वह बोले, एं! बड़ी बहू? किसने कहा?'

'मैंने पहिचान लिया और व्रज ने भी कहा है।'

'परन्तु वह तो दस वर्ष हुए मर चुकी।'

'मरा आदमी क्या कभी लौटता है?'

'परन्तु इतने दिन वह रही कहा?'

'यह सब मैंने अभी व्रजेश्वर से नही पूछा है, पूछूंगी भी नही। जब व्रज उसे घर लाया है तो समझ-बूझकर ही लाया होगा।'

'मैं पूछता हूं उससे।'

'तुम्हें मेरी कसम जो तुमने उससे कुछ भी कहा। एक बार तुम्हारे कहे से मैं अपना लड़का खो बैठी थी। अब यदि तुम कुछ कहोगे तो मैं नदी में कूदकर प्राण दे दूंगी।'

हरिवल्लभ बोले, 'तो लोगों मे नये विवाह की ही बात फैली रहने दो। यह बात न कहना।'

गृहिणी ने यह समाचार व्रजेश्वर को सुनाया तो वह बोला, 'नहीं, मैं इस तरह की चोरी की कोई बात न करूंगा। मेरी प्रफुल्ल देवी है। उसने हमारे परिवार की प्रतिष्ठा को बचाया है। जो पचास हजार रुपया देकर पिताजी ने अपनी रक्षा की थी वे उसी ने दिए थे।'

यह सुनकर हरिवल्लभ दंग रह गए।

प्रफुल्ल ने व्रजेश्वर से कहकर सागर को बुलवा भेजा।

जो बुलाने गया था, उसने सागर को बताया कि व्रजेश्वर एक और विवाह करके लाए हैं। यह सुनकर सागर को बड़ी घृणा हुई।

सागर ससुराल आई। आते ही वह पहिले नयन बहू के पास गई। सागर और नयन एक-दूसरे की आंख का कांटा थीं, परन्तु आज दोनों एक होकर मिलीं। नयन तारा की दशा हांड़ी में बन्द सांप जैसी थी।

प्रफुल्ल के आने के पश्चात् उसकी केवल एक बार ब्रजेश्वर से भेंट हुई थी। उसकी गाली की चोट खाकर ब्रजेश्वर भाग खड़ा हुआ था।

सागर बोली, 'सुना है एक और विवाह किया है ?'

'क्या जाने विवाह है या निकाह ?'

'ब्राह्मण का क्या निकाह होता है ?'

'ब्राह्मण है या शूद्र, या मुसलमान। मैं क्या देखने गई हूं ?'

'ऐसी बात न कहो। अपनी जात बचाकर बात करनी चाहिए।'

'जिसके घर मे इतनी बड़ी लड़की ब्याहकर आए उसकी जात क्या रहती है ?'

'कितनी बडी है ? हमारी ही आयु की होगी ?'

'तेरी मा के बराबर है।'

'बाल पके है क्या ?' सागर ने पूछा।

'बाल न पके होते तो रात दिन घूंघट निकालकर क्यों रखती वह ?'

'दांत भी टूटे है ?'

'बाल पक गए तो क्या दांत न टूटते ? एक भी दात नहीं है ?'

'ऐसा किया क्यो ?'

'कुलीनों के यहां यही सब होता है ?'

'शक्ल-सूरत से कैसी है ?'

'साक्षात् परी।'

'मैं जरा देख आऊं।'

'जा, जन्म सार्थक कर आ।'

नई सौत को खजते-खोजते सागर ने उसे तालाब पर पकड़ा। प्रफुल्ल पीठ किए बैठी थी। सागर ने पीछे से पूछा, 'क्या तुम्हीं हमारी नई बहू हो जी ?'

'कौन, सागर! आ गई तू ?' कहकर प्रफुल्ल ने सागर की ओर मुह किया। सागर, विस्मित होकर बोली, 'देवी रानी ?'

'चुप, देवी मर चुकी।'

'प्रफुल्ल।',

'प्रफुल्ल भी मर चुकी।'

'तब तुम कौन हो?'

'नई बहू।'

'यह सब कैसे हुआ, मुझे बताओ।

'यह सब यहा कहने की बात नही है। घर चलो, वहीं सब बातें बताऊंगी।'

दोनों घर चली आईं। प्रफुल्ल ने सागर को सब समझाया। सागर बोली, 'क्या अब गृहस्थी मे मन लगेगा? रानीगिरी करने के बाद बर्तन माजना, घर बुहारना भला लगेगा? योग-शास्त्र के बाद ब्रह्म ठकुरानी बन सकोगी? जिनके इशारे पर दो हजार आदमी नाचते थे, वह क्यों कर आज्ञा पालन कर सकेगी?'

'कर सकेगी, तभी तो आई है। स्त्रियो का यही धर्म है। गृहस्थ-धर्म सबसे कठिन है। इससे बढ़कर कोई भी योग नही है। इससे कठिन और कौन सन्यास होगा? मैं यही सन्यास धारण करूंगी अब।'

'तब कुछ दिन तुम्हारे पास रहकर मैं भी तुम्हारी शिष्या बनूंगी बहिन।'

ससुराल मे रहकर सागर ने देखा प्रफुल्ल ने जो कहा था, वही किया। घर के सब लोग सुखी हुए। सास प्रफुल्ल से इतनी प्रसन्न थी कि घर का सारा भार उसे सौंपकर सागर के लड़के को लिए फिरती रहती थी। ससुर ने भी प्रफुल्ल का गुण समझा। अब जो काम वह न करती वह उन्हे अच्छा ही न लगता था। सास ससुर प्रफुल्ल से पूछे बिना कोई काम नही करते थे। ब्रह्म ठकुरानी ने भी रसोई का भार प्रफुल्ल पर छोड़ दिया था। अब रसोई तीनों बहुए बनाती थी, परन्तु जिस दिन प्रफुल्ल कुछ नही बनाती थी, उस दिन किसी को कुछ अच्छा न लगता था। जिसके पास प्रफुल्ल न खडी होती थी वही सोचता था कि आज भरपेट भोजन न कर सका। अन्त मे नयन बहू भी उसकी प्रशसक बन गई। अब वह किसी से कलह नही करती थी। सागर इस बार बहुत दिन बाप के यहा जाकर नही ठहर सकी, लौट आई। यह सब, लोगो के लिए बड़े आश्चर्य की बात थी, परन्तु प्रफुल्ल के लिए नही। प्रफुल्ल ने

निष्काम धर्म का अभ्यास किया था। प्रफुल्ल गृहस्थी में आकर ही यथार्थ संन्यासिनी हुई थी। उसे कोई कामना नहीं थी। वह केवल काम खोजती थी। कामना का अर्थ है अपना सुख खोजना, काम का अर्थ है दूसरे का सुख खोजना। प्रफुल्ल भवानी ठाकुर द्वारा सान पर चढ़ाई हुई तलवार थी जिसने सांसारिक कष्टों को अनायास ही काट डाला था।

प्रफुल्ल का झगड़ा अब ब्रजेश्वर के साथ था। वह कहती थी, मैं अकेली ही तुम्हारी स्त्री नहीं हूं। तुम जैसे मेरे हो, वैसे ही सागर और नयन बहू के भी हो। वे दोनों भी तुम्हारी पूजा क्यों नहीं कर पातीं? ब्रजेश्वर यह कुछ नहीं सुनता था। उसका हृदय केवल प्रफुल्लमय था। प्रफुल्ल कहती थी, 'मुझ जैसा ही उन्हें भी प्यार करो। अन्यथा मुझ पर तुम्हारा प्रेम पूर्ण न होगा। मैं और वे एक ही हैं।' यह ब्रजेश्वर की समझ में नहीं आता था।

अब घर के आर्थिक काम भी उसके हाथ में आ गए थे। जमींदारी के काम में भी गृहस्वामी कहते, 'नई बहू से पूछो, क्या करना चाहिए?' प्रफुल्ल के परामर्श से घर की लक्ष्मी बढ़ने लगी। समय आने पर धन जन से पूर्ण घर छोड़कर हरिवल्लभ का प्रणान्त हुआ।

अब ब्रजेश्वर के पास काफी रुपया था। एक दिन प्रफुल्ल बोली, 'अब आप मेरा पचास हजार रुपया चुका दीजिए।'

'ब्रजेश्वर ने पूछा, 'तुम रुपया लेकर क्या करोगी?'

'रुपया मेरा नहीं, भगवान श्रीकृष्ण का है। मैं उसे उन्हें ही लौटा दूंगी।'

'किस तरह?'

'पचास हजार रुपए से एक अतिथिशाला बनवा दो।'

'ब्रजेश्वर ने वैसा ही किया। अतिथिशाला में अन्नपूर्णा की मूर्ति स्थापित की। उसका नाम रखा गया 'देवी निवास।'

रंगराज, दिवा और निशि 'देवी निवास' में श्रीकृष्ण सेवा के लिए आ गए। भवानी ठाकुर का कुछ पता न चला कि कहां चले गए।

कहते हैं भवानी ठाकुर दूसरे किसी द्वीप पर चले गए।